सम्पादक

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग-६

काली-तन्त्रम्

काली तारा महा-विद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥
बगला सिद्धि-विद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।
एता दश महा-विद्याः सर्व-तन्त्रेषु गोपिताः ॥

सम्पादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

तृतीय संस्करण] सं० २०४२ : १९८५ ई० [मूल्य ५-००

अनुक्रमणिका

'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित 'काली-तन्त्र' का यह तृतीय संस्करण हम सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं।

इसकी उपयोगिता इसी से प्रकट है कि द्वितीय संस्करण जब से समाप्त हुआ, तब से इसके पुनः प्रकाशन के लिए हमसे बराबर अनुरोध किया जा रहा है।

भगवती काली के सम्बन्ध में प्रामाणिक विवरण 'श्रीकाली-कल्पतरु', 'श्रीकाली - नित्यार्चन', 'श्रीकाली-स्तव - मञ्जरी', 'सविधि काली कर्पूर स्तोत्र', 'श्रीकाली स्वरूप-तत्व', 'श्रीश्यामा-सपर्या वासना', 'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र' आदि अनेक प्रकाशनों में उपलब्ध है। ये सभी कृतियाँ तन्त्रज्ञ साधकों द्वारा लिखी व सम्पादित हैं। 'हिन्दू धर्म-कोश' में स्व० डा० चन्द्रबली पाण्डेय द्वारा काली से सम्बन्धित कुछ रोचक सामग्री सङ्कलित है। उसे यहाँ उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है। यथा—

कालका : अम्बाला (पंजाब) से ४० मील दूर कालका स्टेशन है। यहीं कालका देवी का मन्दिर है। परम्परा के अनुसार पार्वती के शरीर से कौशिकी देवी के प्रकट हो जाने पर पार्वती का शरीर श्याम-वर्ण हो गया, तब वे उस स्थान से आकर कालका में स्थित हुईं।

कालिका : काले (कृष्ण) वर्णवाली। यह चण्डिका का ही एक रूप है। इसके नामकरण तथा स्वरूप का वर्णन

'कालिका-पुराण' (उत्तर तन्त्र, अ० ६०) में निम्नांकित प्रकार से पाया जाता है—

इन्द्र के साथ सभी देवता-गण हिमालय में गङ्गावतरण के पास महा-माया को प्रसन्न करने लगे। उनके द्वारा स्तुति किये जाने पर देवी ने मातङ्ग-वनिता की मूर्ति धारण करके देवताओं से पूछा : तुम अमरों द्वारा किस भाविनी की स्तुति की जा रही है ? किस प्रयोजन के लिए तुम लोग मातङ्ग आश्रम में आये हो ?

ऐसा बोलती हुई उस मातङ्गी के शरीर से एक देवी उत्पन्न हुई। उसने कहा : देव-गण मेरी स्तुति कर रहे हैं। शुम्भ और निशुम्भ दो असुर सभी देवताओं को पीड़ित कर रहे हैं। इसलिए उनके वध के लिए समस्त देवताओं द्वारा मेरी स्तुति हो रही है।

मातङ्गी की काया से देवी के निकल जाने पर वह घोर काजल-सदृश कृष्णा (काली) हो गई। वही 'कालिका' कहलाई, जो हिमालय के आश्रम में रहने लगी। उसी को ऋषि लोग 'उग्र-तारा' कहते हैं क्योंकि वह उग्र भय से भक्तों का सदा त्राण करती है।

कालिका उप-पुराण : २६ उप-पुराणों में से एक। इसमें देवी दुर्गा की महिमा तथा शाक्त-मत का प्रतिपादन किया गया है।

कालिका पुराण : इसे ही 'कालिका-तन्त्र' भी कहते हैं। यह बङ्गाल में प्रचलित शाक्त-मत का नियामक ग्रन्थ है। इसमें चण्डिका को पशु अथवा मनुष्य की बलि देने का निर्देश भी है। बलि-पशुओं की तालिका बहुत बड़ी है। वे हैं—पक्षी, कच्छप, घड़ियाल, मत्स्य, वन्य पशुओं के नौ प्रकार, भैंसा,

बकरा, जंगली सूअर, गैंडा, काला हिरन, बारहसिंगा, सिंह एवं व्याघ्र इत्यादि। भक्त अथवा साधक अपने शरीर के रक्त को भी अर्पण कर सकता है। रक्त-बलि का प्रचार क्रमशः कम होने के कारण यह पुराण भी आजकल बहुत लोक-प्रिय नहीं है।

काली : शाक्तों में शक्ति के आठ मातृका-रूपों के अतिरिक्त काली की अर्चा का भी निर्देश है। ...त्रिपुरा एवं चटगाँव के निवासी काला बकरा, चावल, केला तथा दूसरे फल काली को अर्पण करते हैं। उधर काली की प्रतिमा नहीं होती, केवल मिट्टी का एक गोल मुण्डाकार पिण्ड बनाकर स्थापित किया जाता है।

मन्दिर में काली का प्रतिनिधित्व स्त्री-देवी की प्रतिमा से किया जाता है, जिसकी चार भुजाओं में—एक में खड्ग, दूसरी में दानव का सिर, तीसरी वरद-मुद्रा में एवं चतुर्थ अभय-मुद्रा में फैली रहती है। कानों में दो मृतकों के कुण्डल, गले में मुण्ड-माला, जिह्वा ठुड्डी तक बाहर लटकी हुई, कटि में अनेक दानव-करों की करधनी लटकती हुई, तथा मुक्त केश एड़ी तक लटकते हुए होते हैं। वह युद्ध में हराए गए दानव का रक्त-पान करती हुई दिखाई जाती हैं। वह एक पैर अपने पति शिव की छाती पर तथा दूसरा जंघा पर रखकर खड़ी होती हैं।

आजकल काली को कबूतर, बकरों, भैंसों की बलि दी जाती है। पूजा खड्ग की अर्चना से प्रारम्भ होती है। बहुत से स्थानों में काली अब वैष्णवी हो गई हैं।

काली घाट : शक्ति के मन्दिरों में दूसरा स्थान काली-घाट (कलकत्ता) के काली-मन्दिर का है, जबकि प्रथम स्थान कामरूप (आसाम) के कामाख्या मन्दिर को प्राप्त है। यहाँ नर-

बलि देने की प्रथा भी प्रचलित थी, जिसे आधुनिक काल में निषिद्ध कर दिया गया है।

काली तन्त्र : 'आगम-तत्व-विलास' में दी गई ग्रन्थों की सूची के क्रम में 'काली-तन्त्र' का सातवाँ स्थान है। इसमें काली के स्वरूप और पूजा-पद्धति का वर्णन है।

भगवती काली का नामान्तर 'श्यामा' है। इस नाम से संबन्धित विवरण उक्त कोष में निम्न प्रकार दिया है—

श्यामा : कालिका अथवा दुर्गा। श्यामा की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है—

(कालिका पुराण, ४०वां अध्याय)

ततः सा कालिका देवी योग-निद्रा जगन्मयी।
पूर्व - त्यक्त - सती - रूपा जन्मार्थं मेनकां ययौ॥
समयस्यानुरूपेण मेनका - जठरे शिवा।
सम्भूय च समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात्॥

ध्यान देने की बात है कि उक्त विवरणों में कोष - कार ने कहीं यह उल्लेख नहीं किया है कि 'काली' दश-महा-विद्याओं में आदि स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। वैसे कोष-कार पाण्डेय जी इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं क्योंकि इसी 'कोष' में 'महा-विद्या' और 'महा-शक्ति' शब्दों के अन्तर्गत उन्होंने दश-महा-विद्याओं एवं तीन महा-शक्तियों के संदर्भ में 'महा-काली' का नामोल्लेख किया है। किन्तु कदाचित् उन्हें ज्ञात नहीं था कि दस - महा विद्याओं में प्रथम महा-विद्या का नाम 'दक्षिणा-काली' है, 'महा-काली' नहीं। 'कोष' में 'महा - काली' और 'भद्रकाली' का परिचय निम्न प्रकार है—

भद्र-काली : काली के सौम्य या वत्सल रूप को 'राख्या' या 'भद्र-काली' कहते हैं, जो प्रत्येक बंगाली गांव की रक्षिका

होती है। महा-मारी आरम्भ होने पर इसके सन्मुख प्रार्थना-यज्ञ किये जाते हैं। काली को उदार-रूप में सभी जीवों की माता, जन्म देनेवाली, मनुष्य व जन्तुओं में उत्पादन शक्ति उत्पन्न करनेवाली मानते हैं। इसकी पूजा फल-फूल, दुग्ध, पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले पदार्थों से ही की जाती है। इसकी पूजा में पशु-बलि निषिद्ध है।

महा-काली : शाक्त-मतानुसार दस महा-देवियों में से प्रथम महाकाली हैं। इनके शक्तिमान अधीश्वर महा-काल हैं।

भ० काली के अन्य प्रमुख नामों—दक्षिणा काली, गुह्य-काली आदि का 'कोष' में कोई उल्लेख नहीं है। और न काली के मन्त्र यन्त्र, ऋष्यादि, आवरण-पूजा का कोई सङ्केत कहीं किया गया है। इससे प्रकट है कि 'काली' के वास्तविक स्वरूप एवं रहस्य को समझने के लिये प्रामाणिक तन्त्रों एवं साधक विद्वानों द्वारा लिखित कृतियों का अध्ययन करना कितना आवश्यक है, अस्तु।

भगवती काली की उपासना के सम्बन्ध में 'काली-तन्त्र' बड़ा ही प्रामाणिक मूल तन्त्र माना गया है। यही कारण है कि तन्त्र-सार, श्यामा-रहस्य जैसे अन्यान्य निबन्ध-ग्रन्थों में 'काली-तन्त्र' के उद्धरण प्रमाण-रूप में मिलते हैं। ऐसे महत्व-पूर्ण 'काली-तन्त्र' का सम्भवतः पहले पहल प्रकाशन संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता द्वारा संस्कृत-टीका सहित हुआ था। परिषद् के अन्यतम उपाध्याय श्री सतीशचन्द्र सिद्धान्तभूषण भट्टाचार्य ने इस प्रकाशन का सम्पादन करने के साथ ही संक्षिप्त वङ्ग-भाषानुवाद भी करने की कृपा की थी। खेद है कि यह प्रकाशन आज अप्राप्य है। इसी की एक प्रति सारनाथ-निवासी परम पूज्य श्री १०८ स्वामी सदाशिव तीर्थ की कृपा से हमें प्राप्त हुई थी। उसी के फलस्वरूप 'काली-तन्त्र' का यह संस्करण हम

तन्त्र-प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत करने में सफल-मनोरथ हो सके। उक्त स्वामी जी ब्रह्मी-भूत हो चुके हैं। अतः हम यहाँ उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

'काली-तन्त्र' में कुल बारह पटल हैं, जिनके विषयों की जानकारी अनुक्रमणिका से पाठक प्राप्त कर सकते हैं। इन बारहों का सारांश हिन्दी में इस आशय से दिया जा रहा है कि संस्कृत न जाननेवाले बन्धु भी इससे लाभ उठा सकें।

बारहवाँ पटल 'काली-तन्त्र' की एक दुर्लभ प्रतिलिपि में दृष्टि-गत हुआ है। अन्य प्रतिलिपियों में एकादश पटल में ही इस 'काली-तन्त्र' की समाप्ति मिलती है। इसी कारण इसके सम्बन्ध में पाठान्तरों का अभाव है। बँगला संस्करण में इसका अर्थ भी नहीं प्रकाशित किया गया।

यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि बँगला संस्करण काली-तन्त्र की निम्न हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के आधार पर प्रकाशित किया गया था—

१ धानुका-निवासी श्री पार्वतीचरण शास्त्री द्वारा प्रदत्त तीन पाण्डुलिपियाँ

२ संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता की पाण्डुलिपि।

इन चार पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त यदि किन्हीं महानुभाव के पास 'काली-तन्त्र' की हस्तलिखित कोई प्रति हो, तो वे कृपया उसे हमें भेजने का कष्ट करेंगे। इससे अगले संस्करण में हम उसका भी उल्लेख कर सकेंगे।

हमें विश्वास है कि 'काली-तन्त्र' के इस नवीन संस्करण से भगवती के उपासकों को प्रसन्नता होगी और इसी में हमारे प्रयास की कृतार्थता है।

प्रयाग, शारदीय नवरात्र, २०४२ **—'कुलभूषण'**

'काली-तन्त्र' का सारांश

प्रथम पटल : सपर्या-विधि

पहले पटल में भगवती दक्षिणा काली के बाइस अक्षर के मन्त्र की पूजा बताई है, जो पशु और वीर दोनों भावों से हो सकती है। यथा—

कैलाश शिखर पर विराजमान महादेव से पार्वती ने पूछा—हे महादेव ! चतुर्वर्ग की फल-दायिका ब्रह्म-स्वरूपा कालिका देवी की महा-विद्या (अर्थात् महा-मन्त्र), उनके मन्त्र-भेद और उनकी विविध प्रकार की पूजा का विषय मैं सुनना चाहती हूँ।

महादेव ने कहा—महा-माया महा-योगीश्वरी परब्रह्मस्वरूपा वह महा-विद्या सब विद्याओं की महा-राज्ञी है और सब विद्याओं की देनेवाली है। क्रम-पूर्वक तीन ककारों में रेफ, दीर्घ ईकार और विन्दु का योग करने से तीन वीज (क्रीं, क्रीं, क्रीं) होते हैं। उनके वाद दो कूर्च-वीज (हूं हूं), उनके वाद दो लज्जा-वीज (ह्रीं ह्रीं), उनके वाद 'दक्षिणे कालिके' ये दो पद, इनके वाद क्रमपूर्वक पूर्वोक्त सातो वीज (क्रीं क्रीं, हूं हूं ह्रीं ह्रीं), उनके वाद अन्त में

वह्नि-वधू ('स्वाहा') का योग करने से दक्षिणा काली का वाइस अक्षर का मन्त्र होता है। यथा—

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

इस मन्त्र के सम्वन्ध में सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, आदि-आदि चक्रों के विचार करने की आवश्यकता नहीं है और न ही इसकी उपासना में युग-भेद के अनुसार चतुर्गुण जपादि जैसे अतिरिक्त परिश्रम अथवा योगादि का आश्रय लेकर शरीर को कष्ट देने की आवश्यकता होती है। इस मन्त्र का केवल स्मरण भर करने—जप-मनन मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकता है।

इस मन्त्र कें ऋषि भैरव (महा-काल), छन्द उष्णिक्, देवता दक्षिण कालिका, वीज लज्जा-वीज (ह्रीं), शक्ति कूर्च-वीज (हूं), विद्या अनिरुद्ध सरस्वती (अर्थात् इसकी उपासना से अत्यधिक वाक्-शक्ति प्राप्त होती है) और विनियोग कवित्व-शक्ति के प्राप्त्यर्थ होता है।

'ॐ क्रां हृदयाय नमः; ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा' इत्यादि रूप से अङ्ग-न्यास और कर-न्यास करे। फिर वर्ण-न्यास और व्यापक न्यास करके पीठ-न्यास करे। हृदय-कमल में सुधा-सागर, सागर के मध्य में रत्न-द्वीप, द्वीप-मध्य में चारों ओर पारिजात वृक्ष, वृक्षों के मध्य में कल्पवृक्ष, उसके मूल स्थान में सुवर्ण के वने चार द्वारों से युक्त चिन्ता-मणि गृह, जिससे सुगन्ध फैल रही है। इसके वाद श्मशान, उसके मध्य में कल्प-वृक्ष, उसके मूल-स्थान में विविध प्रकार की मणियों से शोभित मणि-मय पीठ, चारों ओर श्मशान के शव-मांसादि के भक्षण से तृप्त हुई शिवायें घूम रही हैं; शव-मुण्ड, चिता के अङ्गार, हड्डियाँ आदि बिखरी हुई हैं।

उसी मणि-पीठ की आठ दिशाओं में १ इच्छा, २ ज्ञान, ३ क्रिया, ४ कामिनी, ५ काम-दायिनी, ६ रति, ७ रति-प्रिया, ८ नन्दा—ये आठ शक्तियाँ और इनके मध्य में मनोन्मनी शक्ति विराजमान है। इन नौ शक्तियों के मस्तक पर महा-प्रेत-रूपी सदा-शिव सो रहे हैं। इस प्रकार पीठ की कल्पना कर शव-रूपी सदा-शिव के ऊपर देवी का ध्यान करे।

भीषण श्मशान-भूमि, चारों ओर शिवायें भयङ्कर स्वर में चिल्ला रही हैं। इस प्रकार के श्मशान के मध्य में शव-रूप महा-देव के हृदय के ऊपर देवी स्थित हैं। देवी का दाहना पैर शव के हृदय पर और बायाँ पैर शव की दोनों जङ्घाओं पर रखा हुआ है। बिखरे हुए लम्बे-लम्बे केश देवी के दाहने अङ्गों को ढँके हुए हैं। तीन नेत्र नवोदित-सूर्य के समान रक्त-वर्ण के हैं। मुख भक्तों के लिए प्रफुल्लित कमल के समान आनन्द-दायक और विकसित है परन्तु अभक्तों के लिए भय-दायक, अनेक दाँत एक पर एक जमे हुए, सामने का दाँत उन्नत, जिह्वा लपलपाती हुई, ओठ के दोनों किनारों से पीने से बची हुई रक्त-धारा के बहने से मुख शोभायमान है; मुख पर हास्य का कुछ भाव है। दो मृत नर-शिशुओं से कान के भूषण बने हैं। चार हाथों में से—बाईं ओर नीचे के हाथ में तुरन्त का कटा हुआ नर-मुण्ड और ऊपर के हाथ में नङ्गा खड्ग है; दाईं ओर ऊपर के हाथ में अभय-मुद्रा और नीचे के हाथ में वरद मुद्रा है। गले में चरण-कमलों तक लटकी हुई मुण्ड-माला है। इस माला में पचास नर-मुण्ड हैं, जो एक दूसरे से केश द्वारा गुँथे हुए हैं। दोनों स्तन उन्नत और स्थूल हैं। कमर में वस्त्र नहीं है, किन्तु कटे हुए नर-कर-समूह द्वारा बनी हुई करधनी पहने हुई हैं। देवी का शरीर

वर्षा करने को उद्यत काले बादलों के समान श्याम-वर्ण का है और मुण्ड-माला से निकलते हुए रक्त से रँगा हुआ है। वे शिव को नीचे लिटाकर उनके ऊपर नृत्य कर रही हैं। इससे प्रतीत होता है कि वे महा-काल के साथ विपरीत-रति में आसक्त हैं। देवी भयङ्कर शब्द कर रही हैं अर्थात् अभक्तों के लिए उनका शब्द भयकारी है। उनका स्वरूप अत्यन्त उग्र है और स्थूल इन्द्रियों के परे है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिए दक्षिणा काली का ध्यान इसी प्रकार करे।

अब देवी की पूजा-विधि कही जाती है। इनकी पूजा करने से मोक्ष के इच्छुक व्यक्ति मुक्ति पाते हैं और भोग के इच्छुक लोगों की सभी कामनायें पूरी होती हैं।

सबसे पहले पूजा के आधार 'यन्त्र' का कथन किया जाता है। पहले एक अधोमुख त्रिकोण बनावे। इस त्रिकोण को मध्य में रखते हुए इसके बाहर एक के बाद एक करके क्रमशः चार त्रिकोण और बनावे। इस प्रकार पाँच त्रिकोण हुये। ये सभी सम-बाहु त्रिभुज होंगे। इन त्रिकोणों को मध्य में रखते हुए इनके बाहर एक वृत्त, वृत्त के बाहर अष्ट-दल-कमल, कमल के बाहर एक ओर वृत्त, वृत्त के बाहर चार द्वारों से युक्त चतुरस्र का भूपुर बनावे। (प्रथम त्रिकोण के ठीक मध्य में एक विन्दु और 'क्रीं क्रों' इन दो वीजों को लिखे—ऐसा क्रम है, यद्यपि काली-तन्त्र में उल्लेख नहीं है।) यही दक्षिणा काली का पूजा-यन्त्र है।

इसके बाद पीठपूजा कर अपने बाईं ओर अर्घ्य-स्थापन करे। तब षडङ्ग-पूजा कर पुनः ध्यान करे। फिर हृदय-कमल में यन्त्र के मध्य में प्रकाशमान देवी का आवाहन कर उपलब्ध उपचारों से पूजन करे।

तदनन्तर देवी को नमस्कार कर आवरण - पूजा करे। यथा—यन्त्र के पाँच त्रिकोणों के समस्त पन्द्रह कोणों में वामावर्त से क्रमशः १ काली, २ कपालिनी, ३ कुल्ला, ४ कुरुकुल्ला, ५ विरोधिनी, ६ विप्रचित्ता, ७ उग्रा, ८ उग्रप्रभा, ९ दीप्ता, १० नीला, ११ घना, १२ वलाका, १३ मात्रा, १४ मुद्रा, १५ मिता—इन १५ देवताओं की पूजा करे। ये सभी श्याम-वर्ण को हैं। इनके दाहने हाथ में तलवार, वाएँ हाथ में तर्जनी अर्थात् ताड़न–यष्टि है, गले में मुण्ड-माला और मुख पर मुस्कान है। इसके बाद १ ब्राह्मी, २ इन्द्राणी, ३ माहेश्वरी, ४ चामुण्डा, ५ कौमारी, ६ अपराजिता, ७ वाराही, ८ नारसिंही—इन आठ मातृकाओं की पूजा करे। प्रत्येक देवता को अनुलेपन, गन्ध, धूप, दीप तीन-तीन वार प्रदान करे। तदनन्तर गुरु-पंक्ति, षडङ्ग-देवताओं और इन्द्रादि दश-दिक्पालों की क्रमशः पूजा करे

आवरण-देवताओं की पूजा कर चुकने पर मूल-देवता को पुनःयथा-शक्ति नैवेद्यादि प्रदान करे। फिर गुरुदेव को प्रणाम कर मूल-देवता का ध्यान करता हुआ मूल-मन्त्र का एक हजार बार जप करे। इसके बाद 'गुह्यातिगुह्य गोप्त्री' इत्यादि पढ़कर तेजो-मय जप-फल देवी के बाएँ हाथ में अर्पित करे। फिर अपने मस्तक पर पुष्प चढ़ाकर अष्टाङ्ग-प्रणाम कर संहार-मुद्रा से देवी का विसर्जन करते हुये उन्हें अपने हृदय में ले आवे।

पुरश्चरण-काल में भी इसी पूजा को करे।

द्वितीय पटल : पुरश्चरण की विधि

जीव - हीन शरीर के समान ही पुरश्चरण - हीन मन्त्र भी किसी कार्य - साधन में समर्थ नहीं होता। पुरश्चरण के

द्वारा मूर्ख व्यक्ति की भी सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। उक्त मन्त्र का एक लाख जप करने से पुरश्चरण होता है। पशु-भाव में हविष्याशी और संयत रहकर प्रातःकाल से मध्याह्न तक जप करे। वीर-भाव में पञ्च-मकार-युक्त होकर रात्रि में जप करे। विभिन्न आचारों में परायण न होना चाहिए, अर्थात् पशु-भाव का साधक पश्वाचार से ही पुरश्चरण करे; वीराचार का अवलम्बन न करे। इसी प्रकार वीर-भाव का साधक वीराचार से ही पुरश्चरण करे। पुरश्चरण-काल में देवी-पूजा-गत बलिदान के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की प्राणि-हिंसा न करे और न ही किसी की निन्दा करे। इस प्रकार के पुरश्चरण-द्वारा मन्त्र-सिद्धि प्राप्त कर उसके बाद शान्तिक, पौष्टिक, वशीकरण, उच्चाटन आदि प्रयोग करे। पुरश्चरण द्वारा मन्त्र-सिद्धि लाभ किए बिना साधक मन्त्र-प्रयोग का अधिकारी नहीं होता।

तृतीय पटल : नैमित्तिक कर्मों की विधि

१ जप, २ होम, ३ तर्पण, ४ अभिषेक और ५ ब्राह्मण-भोजन—ये पाँच अङ्ग पुरश्चरण के होते हैं। इस पटल में जप, होम और तर्पण की विधि कही गई है। किन्तु अभिषेक और ब्राह्मण-भोजन की चर्चा नहीं की गई है। होम और तर्पण की जो विधि दी है, वह वीर-भाव की है; पशु-भाव की विधि नहीं दी है। लता-पुष्प से युक्त विल्व-पत्र, घृत, चावल, मांस, रुधिर, कृष्ण-पुष्प आदि से श्मशान में होम करना होता है। इस प्रकार के होम से सब प्रकार की कामनाएँ पूर्ण होती हैं, अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं; पाण्डित्य और वाक्-सिद्धि मिलती हैं; रक्त-धारा-युक्त जल, स्वकीय अथवा परकीय मज्जा, शक्ति-

कुल-प्रक्षालित जल, मेष-महिष-नर-मूषक-मार्जार आदि का रक्त —इनमें से किसी द्रव्य द्वारा 'तर्पण' करने से भी पूर्वोक्त फल होता है। इस प्रकार की क्रिया से पाप-पुण्य का क्षय होकर साधक को जीवन्मुक्ति मिलती है।

चतुर्थ पटल : काम्य कर्मों की विधि

इस पटल में वीर-भाव-सम्मत अनेक प्रकार की काम्य-विधियाँ बताई हैं। ये विधियाँ बड़ी रहस्य-मयी हैं। इन्हें गुरुदेव से समझना चाहिए।

स्त्रियों को मारना या उनकी निन्दा करना मना है। उनके साथ कुटिल या अप्रिय व्यवहार नहीं करना चाहिए। स्त्री को देवता, स्त्री को ही प्राण और स्त्री को ही भूषण समझना चाहिए। स्त्री द्वारा लाये गये पुष्प, जल, भोज्य पदार्थों आदि से ही देवता की पूजा करे।

पञ्चम पटल : सिद्ध-विद्या की विधि

पहले पटल में दक्षिणा कालो का बाईस अक्षर का जो मन्त्र बताया गया है, उसो को साधन-विधि चौथे पटल तक कही गई है। पाँचवें पटल में पन्द्रह और इक्कीस अक्षरों के दो मन्त्रों का उल्लेख हुआ है। यथा—

१ नमः आं आं क्रों क्रों फट् स्वाहा कालि कालिके हूं।

२ ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं।

दूसरा मन्त्र 'विद्या-रत्न' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी पूजा-विधि २२ अक्षर के मन्त्र-वत् है।

षष्ठ पटल : वीर-साधना

इस पटल में अनेक प्रकार के वीर-साधन वताए हैं। पहले चतुष्पथ-साधन का वर्णन है।

निर्जन वन में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक जप करने से सव सिद्धियाँ मिलती हैं।

शव-साधन के सम्बन्ध में वताया है कि मुण्डों की मालादि धारण कर यह फल-प्रद किन्तु कठिन साधन करना होता है। प्राप्त तिलक-विशेष के द्वारा सिद्धि-लाभ और लोगों का वशीकरण होता है।

१ भद्रकाली, २ नीला, ३ नील-पताका, ४ ललज्जिह्वा और ५ करालिका––इन पाँच देवताओं के मन्त्र वताकर लगुड़-साधन तथा अन्य वीर-साधन वताये हैं।

ये साधन योग्य और अनुभवी गुरु की प्रत्यक्ष देख-रेख में ही करने चाहिए। पुस्तक के सहारे ये साधन करने उचित नहीं हैं, इसी से यहाँ शब्दश: टीका नहीं की गई है।

सप्तम पटल : पुरश्चरण की विधि

जो साधक विस्तृत पुरश्चरण-विधान करने में असमर्थ हैं, उनके लिए इस पटल में संक्षिप्त विधान बताए गए हैं—

१ मङ्गल या शनिवार के दिन एक नर-मुण्ड लेकर पञ्च-गव्य और चन्दनादि से उसका शोधन करे। फिर श्मशान में आधे हाथ का गड्ढा बनाकर उसे उसमें स्थापित करे। तदनन्तर उसके ऊपर आसन बिछाकर उसी पर दिन-रात में एक सहस्र जप करने से सिद्धि मिलती है।

(यह वीराचार-सम्मत है)

२ मङ्गल या शनिवार के दिन एक शव को लाकर उसे प्रथम विधानोक्त नर-मुण्ड के समान मिट्टी में स्थापित कर उसके ऊपर बैठकर किसी मङ्गलवार या शनिवार से प्रारम्भ कर अगले मङ्गलवार या शनिवार तक प्रति-दिन रात्रि में एक सौ आठ वार जप करे, तो सिद्धि मिलती है। (यह भी वीराचार-सम्मत है)

३ कृष्ण हो या शुक्ल-पक्ष, उसकी अष्टमी या चतुर्दशी तिथि के दिन किसी सूर्योदय से लेकर अगले सूर्योदय तक निर्भय होकर एकासन पर बैठकर जप करने से सिद्धि मिलती है। (यह पशु और वीर दोनों भावों से साध्य है)

४ चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण में ग्रास से प्रारम्भ कर मोक्ष होने तक जप करे, तो सिद्धि मिलती है। इस पुरश्चरण में ग्रहण के वाद होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण-भोजन करना होता है। (यह भी पशु और वीर दोनों भावों से सम्मत है)

५ शरत्-काल के देवी-पक्ष (नवरात्र-काल) में चतुर्थी से लेकर नवमी तक प्रति-दिन भक्ति-पूर्वक देवी की पूजा कर प्रति रात्रि में अन्धकार में अकेले बैठकर सहस्र बार जप करे। अष्टमी और नवमो को उपवास रखे। इससे मन्त्र-सिद्धि होती है। (यह वीराचार-सम्मत है)

६ अष्टमो और नवमी के सन्धि-काल में एक सौ आठ युवतो स्त्रियों को पूजा कर पूर्वोक्त विधि से देवी का अर्चन कर १०८ बार मन्त्र जप करने से सिद्धि मिलतो है।

(वीराचार-सम्मत)

७ आकृष्ट शक्ति-मन्त्र में मन्त्र की भावना कर उसका पूजनादि संस्कार कर देव-भाव से मन्त्र-जप-पूर्वक तत्पर हो।

फिर विसर्जन कर नमस्कार-पूर्वक जप करे। प्रातः स्त्रियों को भोजन करावे, तो निस्सन्देह सिद्धि मिलती है।

८ गुरुदेव को अपने घर बुलाकर इष्ट-देवता-रूप में सन्तुष्ट करे। गुरु की पत्नी, पुत्र, कन्या की भी पूजा कर मन्त्र-जप करे, तो सिद्धि मिलती है। (यहाँ जप-संख्या नहीं बताई है, ऐसी स्थिति में नियम है कि एक सहस्र आठ बार जप करे)।

(पशु और वीर—दोनों भावों से सम्मत)

९ सहस्रार में गुरुदेव के चरण-कमलों का ध्यान कर देवता-भाव से गुरु-पूजा करते हुये मन्त्र-जप करने से सिद्धि मिलती है। प्रत्येक क्रिया गुरुदेव की आज्ञा लेकर ही करे और उन्हें यथा-शक्ति दक्षिणा प्रदान करे। गुरुदेव की अनुमति मिलने से दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करने से तान्त्रिक क्रिया करने का अधिकार नहीं रहता। गुरु से उपदेश लिये विना जो क्रिया करता है, उसे सिद्धि नहीं मिलती।

१० स्वकीया और परकीया शक्ति की विधिवत् पूजा करने से सिद्धि मिलती है। इसकी विधि गुरु से जाननी चाहिए।

अष्टम पटल : कुलाचार

समयाचार अर्थात् कुलाचार में परायण साधक सभी प्राणियों के कल्याण-कार्य में लगा रहता है, काम्य कर्मों को छोड़ देता है, नित्य-कर्मों का अनुष्ठान करता है और मन्त्राराधना के द्वारा शिव-भाव में तत्पर रहता है। वह अपने सभी कर्मों को इष्ट-देवता के अर्पण कर देता है। अन्य मन्त्र की पूजा, कुलाचार-निन्दा, स्त्री-निन्दा, वीर-निन्दा, वीर-द्रव्यापहरण, स्त्री पर क्रोध और प्रहार—ये सभी कर्म वह कदापि नहीं करता है।

इस जगत् को स्त्री-रूप में और स्वयं अपने को भी स्त्री-रूप में देखे। वालिका, युवती, वृद्धा, सुन्दरी, कुरूपा, दुष्टा इत्यादि किसी भी स्त्री-रूप को देखते ही मन-ही-मन उसकी पूजा कर उसे प्रणाम करे। स्त्री ही देवता है, स्त्री ही प्राण और स्त्री ही विभूषण है—इस प्रकार सदा समझे। स्त्री द्वारा लाये पुष्प, जल और भोज्य द्रव्यों द्वारा पूजा करने से अक्षय फल होता है।

अपने हृदय के ऊपर स्त्री के स्वरूप का ध्यान विपरीत-रता दशा में करे। १००८ या १०८ वार जप करने से अभीष्ट फल प्राप्त होता है।

महा-शङ्ख की माला में जप करे। यथा-रुचि मधु, मत्स्य, मांस, ताम्बूल और अन्यान्य द्रव्य खाकर, विशेषकर कुलजा स्त्री का दर्शनादि कर जप करे।

इस आचार में जपादि के दिक्, काल और आसनादि के कोई नियम नहीं होते। विना नहाये हुए और खा-पीकर महा-निशा में अपवित्र स्थान में देवी की पूजा और वलि प्रदान करे। सभी वस्तुओं को पवित्र समझे। किसी भी द्रव्य के शुद्धि-विधान की आवश्यकता नहीं है।

पूजादि के लिए सभी काल शुभ हैं। दिन, रात, सन्ध्या, महा-निशा आदि में कोई भेद नहीं है। सभी समय जप और पूजादि किया जा सकता है। सुगन्धि, श्वेत-रक्त पुष्प, विल्व-पत्र आदि से पूजा करे। तुलसी निषिद्ध है।

इस प्रकार आचार में तत्पर हो जो साधक जप-पूजादि करता है, वह आनन्दमय पर-तत्व में मग्न होता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ उसे मिलती हैं।

नवम पटल : द्वा-विंशाक्षरी विद्या की महिमा

'अनिरुद्ध-सरस्वती' अर्थात् वाईस अक्षर के मन्त्र की साधना से सब सिद्धियाँ मिलती हैं। इस मन्त्र का ज्ञान प्राप्त कर साधक पाण्डित्य व कवित्व में वृहस्पति के समान होता है। इसका जप ब्रह्म-जप, इसका ज्ञान आत्म-चिन्ता अर्थात् ब्रह्म-चिन्ता और इसका सम्यक् ध्यान ही योग है। इस मन्त्र का स्मरण करने से महान् विपत्ति, महा-पाप, ग्रह-दोष, महा-भय, महा-उत्पात, महा-शोक, महा-रोग, महा-मोह, महा-दारिद्रय आदि दूर होते हैं।

जो साधक इस मन्त्र से देवी की अर्चना करता है, वही सुकृती और कुल-भूषण है। उसकी जननी धन्य है। उसके मुख में सरस्वती, घर में लक्ष्मी और देह में तीर्थ-समूह सदा निवास करते हैं। धन में वह कुबेर-तुल्य, तेज में सूर्य-तुल्य, बल में वायु-तुल्य, गान में गन्धर्व-तुल्य, दान में कर्ण-तुल्य, ज्ञान में दत्तात्रेय-तुल्य, शत्रु-नाश में अग्नि-तुल्य, पाप-नाश में गङ्गा-तुल्य, सुख-दान में चन्द्र-तुल्य और शासन में यम-तुल्य होता है। वह काल के समान दुरासद, समुद्र के समान गम्भीर, वृहस्पति के समान वक्ता, पृथ्वी के समान सहन-शील और स्त्रियों के लिए कामदेव के समान होता है।

कुल-ज्ञान-परायण साधक दुर्लभ हैं, उनमें भी काली-साधक और भी दुर्लभ हैं। देवी शिव को भले छोड़ दें, किन्तु काली-साधक का परित्याग वे कभी नहीं करतीं।

कालो के समान विद्या नहीं, काली के समान फल नहीं, काली के समान ज्ञान नहीं, काली के समान कोई तपस्या नहीं। परमेश्वर में जितने भी गुण हैं, वे सभी काली-तत्व-ज्ञान से

साधक को प्राप्त होते हैं। लता-साधन में तत्पर कालो का तत्व-ज्ञानी साधक देव-तुल्य होकर क्रमशः मुक्ति-लाभ पाता है।

काली-तत्व उक्त प्रकार का है। इसके प्रति समुचित रूप से आस्था रखते हुये साधना करने से सभी धर्मों का फल प्राप्त किया जा सकता है।

दशम पटल : सिद्ध-विद्याओं की विधि

काली, तारा, दुर्गा, उन्मुखी—इनकी उपासना-पद्धति एक जैसी है। काली और दुर्गा को एक समान ही समझना चाहिए। काली और तारा महा-चीन-क्रम से तथा श्री-विद्या गन्धर्व-क्रम से शीघ्र फल देती हैं। उग्र-मुखी काली, सप्त-सप्तति प्रकार की श्री-विद्या और चत्वारिंशत् प्रकार की भैरवी—गुप्त-साधन में ये सव समान हैं। उग्र-रूपा सभी देवता महा-चीन-क्रम से ही सिद्धि-दायिनी हैं। जिस मन्त्र के लिए जो आचार निर्दिष्ट है, उसी में विशुद्ध-चित्त से तत्पर रहने से मुक्ति मिलती है।

दक्षिणा काली का एकाक्षर मन्त्र है—ककार-सहित रेफ, दीर्घ ईकार और नाद-विन्दु (क्रीँ)। इस मन्त्र को 'कालिका-हृदय' कहते हैं। यही 'सिद्ध-विद्या' नाम से प्रसिद्ध है। उक्त एकाक्षर मन्त्र का तीन वार उच्चारण करने से त्र्यक्षर मन्त्र वनता है। इस मन्त्र से विद्या-लाभ, आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, शान्ति, पुष्टि, आदि कर्म सिद्ध होते हैं। इन दो मन्त्रों के ध्यान, पूजादि सभी बाईस अक्षरवाले मन्त्र के समान ही हैं। इनका पुरश्चरण भी एक लाख जप से होता है।

आकर्षण में रक्त-पुष्प, स्तम्भन में पीत-पुष्प और मारण में कृष्ण-पुष्प द्वारा काली की पूजा करे।

काली का षडक्षर मन्त्र इस प्रकार है—प्रणव, हृल्लेखा, रति-वीज, एकार-युक्त मकार, स्वाहा (ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा)। इसे 'काली-हृदय' भी कहते हैं। इसके ऋषि महाकाल भैरव, छन्द विराट्, देवता सिद्धकाली-ब्रह्मरूपा-भुवनेश्वरी (दक्षिणा-काली का एक स्वरूप), वीज 'क्रीं', शक्ति 'ह्रीं' है। 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः' इत्यादि क्रम से अङ्ग-न्यास करे।

देवी का स्वरूप इस प्रकार है—शव-रूप महा-देव के ऊपर अवस्थिता, महादेव के हृदय पर बायाँ पैर और दोनों जङ्घाओं पर दायाँ पैर। नील-कमल-वत् नील-वर्णा। द्वि-भुजा—दायें हाथ में खड्ग और बायें हाथ में पान-पात्र कपाल। दायें हाथ में स्थित ऊर्ध्व-मुख खड्ग द्वारा उद्भिन्न चन्द्र-मण्डल से गिरती हुई अमृत-धारा देवी के सारे शरीर को आप्लावित कर रही है। बाँयें हाथ में स्थित कपाल से अमृत-पान करती हैं। त्रि-नेत्रा, मुक्त-केशा, दिगम्वरी और ललज्जिह्वा हैं। कमर में नर-कर-समूह की काञ्ची, दोनों कानों में चन्द्र और सूर्य दो कुण्डल सुशोभित हैं। मणि-मय मुकुट आदि से देवी शोभमान हैं।

षडक्षर-मन्त्र का पुरश्चरण इक्कीस सहस्र जप से होता है। त्रिकोण कुण्ड में इसका दशांश अर्थात् इक्कीस सौ होम करे। पूजा-क्रम दक्षिणा काली के एकाक्षर-मन्त्र-वत्। इस मन्त्र से रक्त-पद्म द्वारा होम करने से साधक कुबेर के समान धनी होता है। विल्व-पत्र के होम से राज्य-लाभ, रक्त-पुष्प के होम से जगद्-वशी-करण, पीत-पुष्प के होम से स्तम्भन, मालती-पुष्प के होम से वृहस्पति-तुल्य विद्या-लाभ और कृष्ण-पुष्प के होम से शत्रु का मारण होता है। इन सभी होमों में संख्या दस हजार है। इस मन्त्र की साधना से महा-पापों का नाश होकर साधक नभ-चर होता है।

एकादश पटल : सामान्य साधना

काली की साधना से समस्त विपदायें दूर होती हैं। महोत्पात, महा-भय, दारुण ग्रह-दोष, महा-विपत्ति, महा-युद्ध, दारिद्रय, दुःस्वप्न-दर्शन इत्यादि दोषों की शान्ति के लिये और वश्य-कर्म, स्वस्त्ययन, अभिचार-प्रशमन, उपद्रव-नाश, युद्ध-शान्ति, शत्रु-निवारण, राज्य-भय-शान्ति तथा राज-कोप-शान्ति आदि के हेतु साधक को शिवा-वलि प्रदान करनी चाहिए। जो साधक मङ्गल-कामना से शिवा-वलि प्रदान नहीं करता, उसे कौल-मार्ग से देवी-पूजा करने का अधिकार नहीं होता।

कौल-साधक की उपेक्षा न करे, अपितु उसकी पूजा करे। कौल के प्रसन्न होने से काली का सान्निध्य प्राप्त होता है। जो कौल मार्ग को जानकर तदनुसार देवी की अर्चना करता है, वह धन्य है। कौल-मार्ग के अतिरिक्त विधि से काली की पूजा करने से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। कालो-पूजा से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, वल, पुष्टि, यश, कवित्व, भोग और मोक्ष—ये सब मिलते हैं।

कवित्व-शक्ति पाने के लिये देवी को शुक्ल-वर्णा, स्तम्भन में पीत-वर्णा, मारण में कृष्ण-वर्णा और शत्रु-निग्रह में धूम्र-वर्णा ध्यान करे। सब धर्मों का फल पाने के लिये कुमारी-पूजा करे।

काल का नियन्त्रण करने से 'काली' नाम से जगदम्वा विख्यात हुई हैं। ये ज्ञान-तत्व-दायिनी हैं। भोग और मोक्ष उभय कामना-सिद्धि के लिए इनकी आराधना करे।

द्वादश पटल : परम गुह्य आचार

वीर साधक को प्रतिदिन प्रातः-कृत्य करने के बाद ऋष्यादि-न्यास, अङ्ग-न्यास, वर्ण-व्यापक-पीठ-न्यास कर अन्तर्यजन करना

चाहिए। रात्रि में पञ्च-मकार-युक्त जप-साधना करनी चाहिये। स्तोत्र-पाठ जब समय मिले, तभी करना चाहिये। वीरों के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिये। तर्पण, स्त्रियों के साथ बातचीत और विजया-ग्रहण में रुचि होनी चाहिये।

'कुलाचार' में गोपनीयता का भाव रखे, मृदु भाषा सदा बोले और सदा गुरु की आज्ञा का पालन करे। वीरों की कभी निन्दा न करे। 'वामाचार' और 'कुलाचार' का माहात्म्य असीम है। प्रयत्न-पूर्वक उसी में तत्पर रहना चाहिये।

पहले गुरु का स्मरण करे। फिर कुण्डलिनी का ध्यान करे कि वह जिह्वा के अग्र-भाग में आकर विराजमान है। तब उसे नमस्कार करते हुये गुरु-देव और ज्येष्ठ साधकों तथा शक्ति को प्रणाम-पूर्वक तर्पण-चर्वण करे।

अभिषिक्त वीर को मन्त्र-दाता गुरु के समान समझे। अभिषेक हुये बिना जो प्रधानता स्वीकार करता है, उसे आयु-विद्या-यश और बल इन चारों की हानि सहनी पड़ती है।

सभी शक्ति-मन्त्रों के सम्बन्ध में इसी प्रकार आचार विहित है। कालिका, तारा, भैरवी आदि की उपासना में इसका विशेष महत्व है। काली और तारा में भेद माननेवाला नरक का भागी होता है।

साधिका स्त्री को पूजा, न्यास-जालादि करने को आवश्य-कता नहीं। वह कुलाचार-विधि से केवल जप मात्र द्वारा सिद्धि प्राप्त कर सकती है। यदि वह न्यासादि करना चाहती है, तो उसकी विधि यह है कि ऋष्यादि, अङ्ग, पीठ-न्यास करके ध्यान करे। तब 'वह मैं ही हूँ' (साऽहम्) अर्थात् 'मैं जगदम्बा-स्वरूपा हूँ' ऐसी भावना करे। निर्विकल्प होने पर ही देवी की कृपा प्राप्त होती है।

श्रीकाली-तन्त्रम्

(मूल : संस्कृत)

प्रथमः पटलः

सपर्या-विधिः

कैलास-शिखरासीनं देव-देवं जगद्गुरुम्(१)। उवाच पार्वती देवी (२) भैरवं परमेश्वरम्।

श्रीपार्वत्युवाच (३)—देव-देव ! महा-देव ! सृष्टि-स्थित्यन्त-कारक (४) ! किं तद्-ब्रह्म-मयं धाम श्रोतुमिच्छामि तत्वतः। कालिकाया महा-विद्यां (५) समस्त-भेद-संयुताम्। सपर्या-भेद-सहितां चतुर्वर्ग-फल-प्रदाम्।

श्रीभैरव उवाच—महा-विद्यां महा-मायां महा-योगीश्वरीं (६) पराम्। सर्व-विद्यां (७) महा-राज्ञीं सर्व-सारस्वत-प्रदाम् (८)। काम-त्रयं वह्नि-संस्थं (९) रति-विन्दु-विभूषितम् (१०)। कूर्च-युग्मं तथा लज्जा-युगलं तदनन्तरम्। दक्षिणे कालिके चेति पूर्व-वीजानि चोद्धरेत्। अन्ते वह्नि-वधूं दद्याद् विद्या-राज्ञी प्रकीर्तिता।

नात्र सिद्धयाद्यपेक्षाऽस्ति न वा मित्रारि-लक्षणम् (११)। न वा प्रयास-बाहुल्यम् (१२) न काय-क्लेश-सम्भवः। यस्याः स्मरण-मात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः (१३)।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदहृतम् (१४)। देवता कालिका प्रोक्ता (१५) लज्जा-वीजं तु बीजकम्। कीलकं चाद्य-वीजं स्याच्चतुर्वर्ग-फल-प्रदं। शक्तिस्तु कूर्च-बीजं स्याद-निरुद्ध-सरस्वती। कवित्वार्थे नियोगः (१६) स्यादेवं ऋष्यादि-कल्पना।

अङ्गन्यास-करन्यासौ यथावदभिधीयते। षड्-दीर्घ-भाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्। हृदयाय नमः प्रोक्तं शिरसे वह्नि-वल्लभा। शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम्। नेत्र-त्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमः (१७)। एवं यथा-विधि (१८) कृत्वा वर्ण-न्यासं समाचरेत्। वर्ण-न्यासं प्रवक्ष्यामि येन देवी-मयो भवेत्।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ वै हृदयं स्पृशेत् (१९)। ए ऐ ओ औ ततोऽप्यं अः क ख ग घ पुनस्ततः। उक्त्वा च दक्षिणं भुजं स्पृशेत् साधक-सत्तमः। ङ च छ ज समुच्चार्य झ ञ ट ठ ड ढ तथा। इति वाम-भुजे न्यस्य ण त थ द पुनः स्मरेत्। ध न प फ ब भ इति दक्षिण-जंघके न्यसेत्। म य र ल व श ष स ह ल क्ष वाम-जंघके (२०) इति वर्णान् प्रविन्यस्य मूल-विद्यां समुच्चरन् (२१)। सप्तधा व्यापकं कुर्याद् येन देवी-मयो भवेत्। व्यापकत्वेन संन्यस्य ततो ध्यायेत् परां शिवाम्।

पीठ-न्यासं ततः कुर्याद् येन देवी-मयो भवेत्। हृत्-सरोजे सुधा-सिन्धु-मध्ये द्वीपं सुवर्णजं। परितः पारिजातांश्च मध्ये

कल्प-तरुं ततः । तन्मूले हेम-निर्माणं द्वारचतुष्टय-भूषितं । मण्डपं मन्द-वातेन पराक्रान्तं सु-धूपितं । मन्त्र-तन्त्र प्रतिष्ठाप्य (२२) तत्र पूजां समाचरेत् । श्मशानं तत्र सम्पूज्य तत्र कल्प-द्रुमं यजेत् । तन्मूले मणि-पीठं च नाना-मणि-विभूषितं । नानालङ्कार-भूषाढ्यं मुनि-देवैश्च भूषितं । शिवाभिर्बहु-मांसास्थि-मोदमाना-भिरन्ततः । चतुर्दिक्षु शव-मुण्डाश्चिताङ्गारास्थि-भूषिताः । इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी काम-दायिनी । रती रति-प्रिया नन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी । ह्सौः सदा - शिवेत्युक्त्वा महा - प्रेतेति तत्परं । पद्मासनाय हृदयं पीठ - न्यास उदाहृतः । एवं देह-मये पीठे चिन्तयेदिष्ट - देवतां । ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि स्मरणा-च्छिवतां व्रजेत् ।

कराल-वदनां घोरां मुक्त-केशीं चतुर्भुजां । कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्ड-माला - विभूषितां । सद्य-श्छिन्न-शिरः-खड्ग-वामा-धोर्ध्व - कराम्बुजां । अभयं वरदञ्चैव दक्षिणोर्ध्वाध-(२३) पाणिकां । महा-मेघ-प्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीं (२४) । कण्ठावसक्त-मुण्डाली-गलद्-रुधिर-चर्चितां । कर्णावतंस-तानीत-शव-युग्म-भयानकां घोर-दंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नत-पयोधरां । शवानां कर-सङ्घातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीं । सृक्क-द्वय-गलद्-रक्त-धारा-विस्फुरिताननां । घोर-रावां महा-रौद्रीं (२५)श्मशा-नालय-वासिनीं । बालार्क - मण्डलाकार - लोचन-त्रितयान्वितां (२६) । दन्तुरां दक्षिण-व्यापि-मुक्तालम्बि-कचोच्चयां । शव-रूप-

महा-देव-हृदयोपरि-संस्थितां। महा-कालेन च समं विपरीत-(२७) रतातुरां (२८)। शिवाभिर्घोर-रावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्वितां। सुख-प्रसन्न-वदनां स्मेरानन-सरोरुहां। योगिनी - चक्र-सहितां कालिकां भावयेत् सदा।

एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्व-कामार्थ-सिद्धये(२९)। अथार्चन-विधिं (३०) वक्ष्ये देव्याः सर्व - समृद्धिदं। मानसैरर्चयित्वा तु साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत्। यन्त्र-पीठार्चनं वक्ष्ये देव्याः सर्व-समृद्धिदं। येनानुष्ठित-मात्रेण स्वयं भैरव-रूपवान्। येनानुष्ठित-मात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति। अनेक - हेम-रत्नादि-माणिक्य-वर-सिद्धिदं। इन्द्रादि-सुर-वृन्दानां साधनैक - फल-प्रदं। विपक्ष-कुल-संहार-कारणं पौरुष-प्रदम् (३१)। शान्तिकं (३२) पौष्टिकं चैव वशीकरणमुत्तमं। मारणोच्छेद-जनकमाकृष्टि - करमुत्तमम् (३३)। समस्त-शोक - शमनमानन्दाब्धौ निमज्जनम् (३४)। चतुः-समुद्र-पर्यन्त-मेदिनी-साधनोत्तमम् (३५)। स्त्री-रत्न-कुल-सन्दायि पुत्र-पौत्र-विवर्धनम्।

आदौ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमरतां व्रजेत्। आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्-बहिर्न्यसेत्। ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोण-त्रयमुत्तमं। वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेत् पद्मं सुल-क्षणं। ततो वृत्तं विलिख्यैव लिखेद् भूपुरमेककं। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्।

पीठ-पूजां ततः कृत्वा स्व-वामेऽर्घ्यं न्यसेत् प्रिये (३७) ! मूल-विद्यां षडङ्गेन मूल-मन्त्रेण चार्चयेत् । ततो हृदय-पद्मान्तः स्फुरन्तीं परमां कलां । यन्त्र-मध्ये समावाह्य न्यास-जालं (३७) प्रविन्यसेत् । ततो ध्यात्वा महादेवीमुपचारान् प्रकल्पयेत् (३८)। नमस्कृत्य महादेवीं तत आवरणं यजेत् ।

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरु-कुल्लां विरोधिनीं । विप्र-चितां तु सम्पूज्य बहिः षट्-कोणके ततः (३९) । उग्रामुग्र-प्रभां दीप्तां तथा मध्य-त्रिकोणके । नीलां धनां बलाकां च तथैवान्य-त्रिकोणके (४०) । मात्रां मुद्रां मितां चैव तथैवान्त-स्त्रिकोणके (४१) । सर्वाः श्यामा असि-करा मुण्ड-माला-विभूषिताः (४२)। तर्जनीं वाम - हस्तेन धारयन्त्यः शुचि-स्मिताः (४३) । ततो वै मातरः पूज्या ब्राह्मी नारायणी तथा । (ततो वै मातरः पूज्या पद्मेष्वऽष्ट-दलेषु च । तत्रादौ पूजयेद् ब्राह्मीं ततो नारायणीं तथा ।) माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता । वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च । सर्वासामपि देवीनां बलिः पूजा तथैव च(४४) । अनुलेपनकं गन्धो धूप-दीपौ तथैव च(४५) । त्रिस्त्रिः (४६) पूजा प्रकर्तव्या सर्वासामपि साधकैः । गुरु-पंक्ति षडङ्गं च दिक्-पालांश्च ततोऽर्चयेत् ।

एवं पूजां पुरा कृत्वा मूलेनैव यथा-विधि । नैवेद्यादीन् (४७) यथा-शक्त्या दद्याद् देव्यै पुनः पुनः । ततो वै दश-वारांस्तु (४८) दीपं दद्यात् तु (४९) साधकः । पुष्पादिकं पुनर्दद्यान्मूलेनैव यथा-

विधि। ततः सावहितो मन्त्री गुरुं नत्वा शिरः स्थितं। देवीं ध्यात्वा चाष्टोत्तर-सहस्रं (५०) प्रजपेन्मनुं। तेजो-मयं जप-फलं (५१) देव्या हस्ते समर्पयेत्। गुह्यातिगुह्य - गोप्त्री त्वमिति मन्त्रेण मन्त्र-वित्। ततः शिरसि वै (५२) पुष्पं दत्त्वाष्टाङ्गं प्रणम्य च। विसृज्य परया भक्त्या सहारेणैव भक्तितः (५३)। उद्वास्य हृदये देवीं तन्मयो भवति ध्रुवम्। पुरश्चरण - कालेऽपि पूजा चैषा प्रकीर्तिता।

॥ श्रीकाली-तन्त्रे सपर्या - विधिः (५४) नाम प्रथम पटलः ॥

पाठ-भेद

१ जगत्पतिं, २ पप्रच्छ परया भक्त्या, ३ भैरव्युवाच, ४ सृष्टि - स्थिति - लयात्मक, सृष्टि - प्रलय - कारक, ५ महादेव्याः पूजां चैव बिशेषतः, ६ योगेश्वरीं, ७ सर्व-विद्यां, ८ सर्वैश्वर्य-फल-प्रदां, ९ वर्गाद्यं वह्नि-संयुक्तं, १० समन्वितं।

११ नात्र चिन्ता-विशुद्धिस्तु नारि-मित्रादि-लक्षणं, नात्र चिन्ता-विशुद्धिर्वा नारि-मित्रादि - चिन्तनं, १२ न वित्त-व्यय-वाहुल्यं, १३ अस्याः स्मरण-मात्रेण सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।

१४ छन्दो वरानने, १५ देवी, १६ कवित्वे विनियोगः, १७ च अस्त्राय फट् प्रकीर्तितं, १८ यथा-विधं, १९ हृदये न्यसेत्, २० इति वामके, २१ इति व्याप्त्या प्रविन्यस्य मूल-विद्यां समुच्चरेत्, २२ मन्त्रैस्तत्र।

२३ दक्षिणाधोर्ध्वं, २४ दिगम्बरां, २५ स्मितमुखीं, २६ मण्डलाकारां त्रिनेत्रामुन्नत-स्तनीं, २७ वै सार्द्धमुपविष्ट, सार्द्धं तामुपविष्टां, च सममुपविष्टां, २८ स्मरातुरां।

२९ श्मशानालय-वासिनीं, एवं सञ्चिन्त्य तां कालीं प्राण-न्यासं समाचरेत्, ३० अनुष्ठान-विधिं, ३१ शरण-प्रदं, ३२ शान्तिदं, ३३ मारणोच्चाट-जनकं तथाकर्षणमुत्तमं, मारणोच्छेदन-करं, ३४ नन्दाब्धि-विधूदयं, नन्दादि-विभूतिदं, नन्दब्धिा विभूतिदं, ३५ पर्यन्तां धरित्रीं साधयेत् तथा, ३६ ऽर्घ्यं च विन्यसेत्, ३७ न्यासमेवं, ३८ मुपचारैः प्रकल्पयेत्, ३९ बुधः, ४० तथापर-त्रिकोणके, तथैवापरके त्रिके, ४१ तथैवान्य-त्रिकोणके, न्यसेच्चान्य-त्रिकोणके, ४२ विभूषणाः, ४३ च सस्मिताः, ४४ वे देयो बलिः पूजनमेव च, ४५ गन्धं धूप - दीपौ क्रमात् तथा, गन्धं धूप-दीपौ च पानकं, ४६ त्रिभिः, ४७ नैवेद्यान्तं, नैवेद्यादि, ४८ दश-वारं तु, ४९ दत्वा च।

५० शतं च, ५१ जप-जलं, जलं देव्या वाम, ५२ ततो वै शिरसे, ५३ सन्निधापन-मुद्रया, ५४ सपर्या-नियमः, सपर्या-पटलः।

द्वितीयः पटलः

पुरश्चरण-विधिः

भैरव उवाच—साधनं सिद्ध-मन्त्रस्य वक्ष्यामि परमाद्भुतम्। भाग्य-हीनोऽपि मूर्खोऽपि यद्-बोधादमरो भवेत्। साधयेत् सकलान् (१) कामान् सर्व - सिद्धीश्वरो भवेत्। आदौ पुरस्क्रियां कुर्यान्नियमेन यथा-विधि (२)। लक्षमेकं जपेद् विद्यां (३) हविष्याशी दिवा शुचिः। रात्रौ ताम्बूल-पूरास्यः (४) शय्यायां लक्षमानतः। नानाचारो न कर्तव्यो न चारणमितस्ततः (५)। भूत-हिंसा न कर्तव्या पशु-हिंसा विशेषतः। वलिदानं विना देव्या हिंसां

सर्वत्र वर्जयेत् । अन्य-मन्त्र-पुरस्कारं निन्दां चैव विवर्जयेत् । ततः सिद्ध-मनुर्मन्त्री प्रयागार्हो न चान्यथा । जीव-हीनो यथा देही सर्व-कर्मसु न क्षमः । पुरश्चरण-हीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः । तस्मादादौ पुरश्चर्यां कृत्वा साधक-सत्तमः । प्रयोगं च ततः कुर्यात् सर्व-साधक-दुर्लभम् (६) ।

॥ श्रीकाली-तन्त्रे पुरश्चरण-विधिः नाम द्वितीयः पटलः ॥

पाठ-भेद

१ सिद्धि-सकलान्"'साक्षात् सिद्धीश्वरो, २ समाहितः, ३ जपेन्मन्त्री, ४ पूर्णास्यः, ५ न चाचरणमिष्यते, न चाचारमितस्ततः । ६ प्रयोगं च सदा कुर्यात् सर्व-विधि-विधानतः ।

तृतीयः पटलः

नैमित्तिक-विधिः

भैरव उवाच—ततो होम-विधिं वक्ष्ये सर्व-सिद्धि-प्रदायकं । लता-पुष्पान्वितं कृत्वा पर्णानां शतकं सुधीः । तानि सम्मन्त्र्य विधि-वदसकृत् (१) साधकोत्तमः । ततो वै होमयेत् तानि संस्कृतेऽग्नौ यथा-विधि । युगानामयुत् तेन पूजनं जायते शिवे(२)! अनेन क्रम-योगेन यश्चरेद् भुवि साधकः (३) । न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते । धीरो (४) भवति वाग्मी च सर्व-सिद्धिमुपालभेत् ।

हुनेदाज्येन भक्तेन मांसेन रुधिरेण च । कृष्ण-पुष्पेण साज्येन स-रक्तेन विशेषतः । आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात्

सुधीः। महा-कालं हुनेद् यत्नात् पश्चाद् देवीं विशेषतः (५)। त्रिधा विभज्य विद्यां वै साधकः शुद्ध-मानसः (६)। मांसं रक्तं त्वचं (७) केशं नखं भक्तं च (८) पायसम्। आज्यं (९) चैव विशेषेण जुहुयात् सर्व-सिद्धये।

एवं कृते तु सर्वत्र लभते सिद्धिमुत्तमाम्। यद् यत् कामयते कामी (१०) तत् - तदाप्नोति निश्चितं। देव-वन्मानवो भूत्वा भुनक्ति बहुलं सुखम्।

तर्पणस्य विधिं वक्ष्ये येन कार्याणि साधयेत्। तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्त-धारा-युतैस्तथा। मज्जाभिश्च (११) तथा तद्वत् स्वकीयेन परेण (१२) च। आकर्षितायाः कन्यायाः कुल प्रक्षालनेन च। मेष-माहिष-रक्तेन नर-रक्तेन चैव हि। मूष-मार्जार-रक्तेन तर्पयेद् देवतां परां।

एवं तर्पण-मात्रेण साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत्। कविता जायते तस्य द्राक्षा-रस-परम्परा। वृहस्पति-समो भूत्वा देव-वद् भुवि मोदते। न तस्य पाप-पुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवं।

॥ श्रीकाली-तन्त्रे नैमित्तिक-विधिर्नाम तृतीयः पटलः ॥

पाठ-भेद

१ विधि-वदाहूय, २ जायतेऽचिरात्, दक्षिणा पूजिता भवेत्, कालिका पूजिता भवेत्, ३ दुर्लभं, होमकं, होमत; ४ मूको, ५ प्रयत्नतः, प्रपूजयेत्, ६ सिद्ध-मानसः, ७ तिलं, ८ भोज्यं च, ९ साज्यं, १० कामं, ११ रेतोभिश्च, १२ कचेन, करेण।

चतुर्थः पटलः

कामना-विधिः

भैरव उवाच—अथ काम्य-विधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र सर्वगः। साधकः साधयेत् सिद्धि (१) देवानामपि दुर्लभां (२)। कुलागारं पुष्पितायाः दृष्ट्वा यो जपते नरः। अयुतैक - प्रमाणेन साधकः स्थिर-मानसः। केवलं गुप्त-भावेन स तु विद्या - निधिर्भवेत्। संस्कृताः प्राकृताः शब्दा लौकिका वैदिकाश्च ये (३)। वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य च नान्यथा। अथवा मुक्त - केशश्च हविष्याशी सुसंयतः (४)। प्रजपेदयुतं प्राज्ञ एतदेव (५) फलं लभेत्।

नग्नां पर-लतां पश्यन्नयुतं यस्तु साधकः। प्रजपेत् स भवेत् सद्यो विद्याया वल्लभः स्वयं। तस्य दर्शन - मात्रेण वादिनः कुण्ठतां गताः (६)। गद्य-पद्य-मयी वाणी तस्य वक्त्राद् प्रवर्तते (७)। तत्-पदे (८) सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः। तस्य वाक्य-(९) परिचयाज्जडा भवन्ति वाग्मिनः (१०)। अथवा मुक्त-केशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः। प्रजपेदयुतं तस्य एष प्रतिनिधिः स्मृतः।

धन-कामस्तु यो विद्वान् महदैश्वर्य-कामुकः। वृहस्पति-समो यस्तु भवितुं कामयेन्नरः (११)। अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा कुलमा-

मंत्र्य मन्त्र-वित् (१२)। मैथुनं यः प्रयात्येव (१३) स तु सर्व-फलं लभेत्। लता-रतेषु जप्तव्यं महा-पातक-मुक्तये। लतां यदि न लभ्येत तदा मज्जां (१४) प्रयत्नतः। समुत्सार्य जपेन्मन्त्री सर्व-(१५) कामार्थ-सिद्धये।

तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यम प्रियं तथा। सर्वथा च न कर्तव्यमन्यथा सिद्धि-रोध-कृत्। स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणं (१६)। स्त्री - सङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्व-स्त्रियामपि (१७)। विपरीत-रता सा तु (१८) भाविता हृदयोपरि। अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा नासाध्यं विद्यते क्वचित्। तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलं। तद्धस्तावचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत्।

महा-चीन-द्रुम-लता-वेष्टितः साधकोत्तमः। रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं (१९) सैव कल्प-लता भवेत्। महा-चीन-द्रुम-लता-वेष्टनेन च यत्-फलं। तस्यापि षोडशांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः। शवासनाधिक-फलं लता-गेह-प्रवेशनं। श्मशानालयमागत्य मुक्त-केशो दिगम्बरः। जपेदयुत-संख्यं तु सर्व-कामार्थ-सिद्धये।

महा-चीन-द्रुम-लता-मज्जाभिर्विल्व-पत्रकं (२०)। सहस्रं देवीमभ्यर्च्य श्मशाने साधकोत्तमः। तदा राज्यमवाप्नोति (२१) यदि सा न पलायते। स्व-गात्र-रुधिराक्तैश्च विल्व - पत्रैः सहस्रशः। श्मशानेऽभ्यर्च्य कालीं तु (२२) वागीश-समतां व्रजेत्।

अनादिकां तथा (२३) दृष्ट्वा लक्षं जपति भूमिपः। निर्मलां (२४) च तथा दृष्ट्वा वश्यार्थमयुतं जपेत्।

॥ श्रीकाली-तन्त्रे कामना-विधिः नाम चतुर्थः पटलः॥

पाठ-भेद

१ सर्वं, २ दुर्लभं, ३ वैदिका अपि, वैदिकास्तथा, ४ हविष्यं भक्षयेन्नरः, ५ प्रजप्य चायुतं प्राज्ञस्तदेव हि।

६ निष्प्रभा मताः, ७ प्रजायते, ८ तन्नाम्ना, ९ काव्य, १० जड़ी भवति वाल्मीकः, ११ कामयते स्वयं, भूत्वा कवित्वं कारयेत्तथा, १२ यत्नतः, १३ करोत्येषः, प्रयात्येषः, १४ यदि न सङ्गच्छेत् तदा शुक्रं, यदि संसर्गस्तदा शुक्रं, १५ धर्म, ततो जप्यं सर्वं,

१६ स्त्रियो देव्यः स्त्रियः पूज्याः स्त्रिय एव हि भूषणं, १७ स्व-स्त्रिया अपि, १८ रतासक्ता, रतामत्ता।

१९ मन्त्री, २० पत्रकैः, २१ तु राज्यमाप्नोति, २२ देवीं च, २३ मूल-विद्यां लतां, अनादितां तथा, अनुदितां यथा, २४ विमलां।

पंचमः पटलः

सिद्ध-विद्या-विधिः

भैरव उवाच—अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं कल्प-द्रुमं परं। येन जप्तेन विधि-वत् सिद्धयोऽष्टा भवन्ति हि। यस्याः स्मरण-मात्रेण वाचश्चित्रायते(१) नृणां। यज्-ज्ञाना(२)दमरत्वं च लभेन्मुक्तिं चतुर्विधां। ये जपन्ति परां देवीं नियमेन तु संस्थिताः (३)। देवाः सर्वे नमस्यन्ति किं पुनर्मानवादयः।

वृहस्पति-समो वाग्मी धने धन-पतिर्भवेत्। काम - तुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः (४)। तस्य पादाम्बुज-द्वन्द्वं राज्ञा किरीट(५) भूषणं। तस्य भूतिं विलोक्यैव कुबेरोऽपि तिरस्कृतः। य एनां पूजयेद् देवीं नियमे (६) पितृ-कानने। तस्य चाज्ञा-कराः (७) सर्वे सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।

तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोपमः (८)। सम्प्रदाय-विदां वक्तां य एनां वेत्ति तत्वतः। अस्या विज्ञान-मात्रेण कुल-कोटीः समुद्धरेत्। नंदन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा (६)। अपि नः स्व-कुले कश्चित् कुल-ज्ञानी भविष्यति। स धन्यः स च विज्ञानी स कविः स च पंडितः। स कुलीनः स सु-कृती स वशी स च साधकः। स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्नि - होत्री स दीक्षितः (१०)। स तीर्थ-सेवी पीठानां स निवासी स सर्वदः।

स सोम-पायी स व्रती स यज्वा स च साधकः (११)। स संन्यासी च योगी च स मुक्तः (१२)स च ब्रह्म-वित्। स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः। स च विज्ञान-वेत्ता च य एनां वेत्ति तत्वतः। तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा। एनां ज्ञात्वा यजेन् (१३) मन्त्रो सुख-मोक्ष-फल-प्रदां (१४)।

नमः पाशांकुशे द्वेधा फट् स्वाहा कालि कालिके। दीर्घ-तनुच्छदः काली - मनुः पञ्च - दशाक्षरः। अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये नापि विद्यते।

विद्या-रत्नं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णावतंस-वत् (१५)। माया-द्वयं कूर्च-युग्ममैन्द्रान्तम् मादन(१६)त्रयं। माया-विन्द्वीश्वर-युतं दक्षिणे कालिके पदं। संहार-क्रम-योगेन वीज - सप्तकमुद्धरेत्। एक-विंशत्यक्षराढ्यस्ताराद्यः(१७)कालिका-मनुः। पूर्वोक्त-मन्त्र-वत् कुर्यात् पूजां सर्वां विचक्षणः।

॥ श्रीकाली-तन्त्रे सिद्ध-विद्या नाम पञ्चमः पटलः ॥

पाठ-भेद

१ मुक्तिस्तु जायते, २ यजना, ३ नियमेन शवे स्थितां, सदा दैवीं नियमेन नर - स्थितां, नियमेन नराः स्थिताः, ४ रिपूणामनलोपमः, रिपूणां च यमोपमः, ५ मुकुट, ६ तु यजेद्देवीं नियमे, चिन्तयेद्देवीं नियमे, चिन्तयेन्मंत्री नियतः, ७ तस्येवाज्ञा-कराः, ८ तातस्तस्य शिवोपमः, ९ सर्वदा, १० सर्व-दीक्षितः स च भूमिपः।

११ स व्रती सोम-पायीस, स यज्वा स च दीक्षितः, १२ स सोमपायी संन्यासी स योगी, १३ जपेन् १४ महालयां, महा-फलं, १५ श्रोतुः कर्णावतंसकं, १६ मदन, १७ ढ्यः प्रोक्तोऽयं।

षष्ठः पटलः

वीर-साधना

भैरव उवाच—शृणु देवि ! वरारोहे ! वीर-साधनमुत्तमं। नृणां शीघ्र - फलावाप्त्यै प्रकारान्तरमुच्यते। चतुष्पथे चतुर्दिक्षु पुरुषं हृदयं खनेत्। जीवितं ब्रह्म-रन्ध्रे वै दीपान् प्रज्वा-

लयेत्(१) सुधीः। मध्ये तथा खनेदेकं तत्र मूर्द्धासनं (२) भवेत्। पूर्वोक्तेन च मार्गेण तत्र संस्कारमाचरेत् (३)। महा - कालादि-देवेभ्यो बलिं पूर्ववदाहरेत्। कल्पोक्त-पूजां संपूज्य जपेत् प्रयत-(४) मानसैः। दन्ताक्ष - मालया चैव राज - दंतेन मेरुणा। दिग्वासाः प्रजपेन्मन्त्रमयुतं सर्व-दैवतं। जपान्ते च बलिं दत्वा दक्षिणां विभवावधि। सर्व - सिद्धीश्वरो विद्वान् सर्व - देव-नमस्कृतः।

अथवा विजनेऽरण्ये स्थिर-योगासनो(५)नरः। उदयास्तं दिवा जप्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत्। (विल्व-वृक्षे निज-क्रोड़े शवमा-रोप्य यत्नतः। नृसिंह-मुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकया नरः। सहस्रं तत्र जप्त्वा वै सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत्)। वट-मूले शवं नीत्वा तत्र देवीं प्रपूज्य च। सुप्त्वा (६) तत्र मनुं जप्त्वा सर्व - सिद्धीश्वरो भवेत्। कर-काञ्चीं समादाय मुण्डमाला - विभूषितः। तेनैव तिलकं(७)कृत्वा तत्तद्-भस्म-विभूषितः। श्मशाने च सकृज्जप्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत्। कुंकुमागुरु-कस्तूरी-रोचनागुरु-चन्दनं। कर्पूरं पद्मरागं च केशरं हरि-चन्दनं। एकत्र साधितं कृत्वा प्रत्येकं साधयेत् ततः (८)। एतत्-तिलक-मात्रेण राजानं वशमा-नयेत्।

जिह्वाग्रे रुधिरं कृत्वा (९) आकाशे च समाहरेत्। तेनैव गुटिकां (१०) कृत्वा भद्र-कालीं ततो (११) जपेत्। नीलां नील-पताकां च ललज्जिह्वां करालिकां। ललाट-तिलकं कृत्वा साधको

वीतभीः स्वयं। महाष्टमी-नवम्योस्तु संयोगे पुरतः स्थितः। छाग-महिष-मेषाणां चतुर्दिक्षु शरान् क्षिपेत्। कबन्धान् मुण्ड - पुञ्जं च (११) दीपादिभिरलंकृतं (१२)। मध्ये कबन्धमास्तीर्य तत्र गन्धर्व-रूप-धृक्। ताम्बूल-पूर - रक्तास्यमञ्जनाञ्चित - लोचनं। कृत्वा काली-मनुं (१३) जप्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत्।

वियद्-रवि-युतं देवि ! नेत्रान्तं चन्द्र-भूषितं। वीजं प्रत्येक-द्रव्याणां मिलितानां च पार्वति ! मूल-मन्त्रेण मन्त्रं यो (१४) जपेत् साष्ट-शत-त्रयं (१५)। जिह्वाग्रे रुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोर-निःस्वने ! वलिं गृह्ण वरं देहि रुधिरं गगनेऽमले। कालि कालि प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं (१६) कवचं ततः। कालिकेयं समाख्याता वीराणां हित-काम्यया।

कूर्च-युग्मं महा-देवि ! नीलायाः कथितं तव। वियद्-भृगु-युतं देवि ! कल-मिश्रं रवी रतिः। चन्द्र-खण्ड - समायुक्तं ततो नील-पदं ततः। पताके हूँ फडन्ते (१७) स्यात् पूर्व-कूट- (१८) मनुर्मतः। सु-गुप्तेयं महा-विद्या तव स्नेहादिहोदिता (१९)। जय-श्री-करणी (२०) देवी पताकेव(२१) रण-स्थले। तेन नील-पताकेयं विद्या वै वीर-(२२) साधने। उग्र-चण्डा महा - विद्या या पुरा कथिता प्रिये ! ललज्जिह्वा तु सा प्रोक्ता योज्या वै वीर-(२३) साधने। याऽसौ विद्या (२४) महा-तारा सा करालेति कीर्तिता।

भूमि-पुत्र-समायुक्ता याऽमावास्या शुभोदया (२५)। भाद्रे पुमृक्ष-योगेन (२६) तस्यां वीर-वरोत्तमः। विष्णु-क्रान्तां समा-

नीय निक्षिपेन्मृत-भूमिषु । तत्र तां साधितां कृत्वा तद् - दिने मत्स्य-हट्टके (२९) । तत्र तं साधितं (३०) मत्स्यमेक-मूल्येन दापयेत् । तज्जलेनाभिषेकं च पूर्ववच्च शिरोपरि(३१)। साधितां विजयां तस्य उदरे मुख-वर्त्मना । क्षिप्त्वा तत्र खनेन्मत्स्यमञ्ज-नाञ्चित-लोचनः । पूर्व-द्रव्येण तिलकमुत्थाय (३२) च मनुं जपेत् । स्वयं वै तत्र (३३) भगवान् भैरवो लगुडान्वितः । गत-भीतिस्ततो वीरस्तं विलोक्य जपेन्मनुं । यदि भाग्य-वशाद् देवि! लगुडस्तत्र लभ्यते । तदा स्वयं भैरवोऽसौ स्वयं वीरेश्वरो भवेत् ।

मत्स्यमानीय देवेशि ! निक्षिपेत् पितृ-कानने । तत्रासकृज्ज-पित्वा तु देवता-मेलनं भवेत् (३४) । तत्र नत्वा महा-देवं महा-देवीं च भाविनि (३५) ! तद्-भस्म तिलकं कृत्वा स्वयं वीरे-श्वरो भवेत् ।

निशायां मृत - हट्टे च उन्मत्तानन्द - भैरवः । दिग्वासा विमली भस्म-भूषणो मुक्त-केशकः । कपाली खड्ग-हस्तश्च जपेन् मातृकया यदि । तदा तस्य महा-देवि ! सर्व-सिद्धिः करे स्थिता (३६) । डाकिनीं योगिनीं वापि अन्यं वा भूतलाङ्गनां । तत्रा-प्यानीय (३७) संपूज्य सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ।

सर्वेषां जीव-हीनानां जन्तूनां वीर - (३८) साधने । ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा(३९) साधयेद् वीर-साधनं । मृतासनं विना देवि !

पूजयेत् पार्वतीं शिवां । तावत् कालं वसेद् घोरे यावदाहूत-संप्लवं । महा-शवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधान-(४०) वीर - साधने । क्षुद्राः प्रयोग-कर्तॄणां प्रशस्ताः सर्व-सिद्धिदाः । एवं वीर-(४१) क्रमं देवि ! कथितं च तवानघे ! न कस्यचित् प्रवक्तव्यं (४२) मम (४३) प्रीत्या महेश्वरि !

॥ श्रीकाली-तन्त्रे वीर-साधना नाम षष्ठः पटलः ॥

पाठ-भेद

[पृष्ठ ३१, अन्तिम में 'करालिनीं' के पाठ-भेद का क्रमांक (१२) होना चाहिये । फलतः पृष्ठ ३२ के पहले पाठ-भेद क्रमाङ्क (११) को (१३) कर लें और अन्तिम (२६) को (२८)]

१ लयेदिति, लयेद्दिशि, २ तथा मृद्वासनं स्तरेत्, तत्र शुद्धासनं भवेत्, ३ मारभेत्, ४ नियत, ५ स्थिर शय्यासनो, अस्थि-शय्यासनो, ६ स्थित्वा, ७ जिह्वाग्रे रुधिरं, ८ साधयेत् सुधीः, ९ वीर, १० वटिकां, ११ तत्र काली-मनुं, १२ करा-लिनीं, १३ कवन्ध-मुण्ड-पुंजं च, कवन्धान् मुण्ड-पुञ्जादीन्, १४ लंकृतान्, १५ तत्र मनुं, १६ मन्त्रज्ञो, १७ सार्द्ध-शत-द्वयं, सार्द्ध-शत-त्रयं, १८ ततः फट्, १९ फडन्तं, २० पूर्व-कूर्चं, २१ न्मयो-दिता, २२ करिणी, २३ पताकेयं, २४ योज्या वै नील, २५ नील, मयोक्ता वै संयोज्या नील, २६ आदि-विद्या, या सा विद्या, २७ शुभ-प्रदा, २८ पुष्कर-योगेन, पुष्यर्क्ष-योगेन, २९ मृत-हट्टके, मृत-सूतके, ३० प्रसारितं, ३१ शवोपरि, ३२ तिलकं पूर्व-द्रव्येण उत्थाय, तिलकी सर्व-द्रव्येण उत्थाय, ३३ स्वयमायाति, ३४ तत्र सकृज्जपित्वा तु देवतामिव लंघयेत्, ३५ भामिनि, ३६ प्रजायते, ३७ तत आनीय, ३८ नील, ३९ गोमये कृत्वा, ४० कालिका । ४१ नील, ४२ प्रयोक्तव्यं, ४३ तव ।

सप्तमः पटलः

रहस्य-पुरश्चरण-विधिः

देव्युवाच—ज्ञातमेतन्मया देव (१) ! त्वत्प्रसादान्महेश्वर ! अशक्तानां तु मे देव ! पुरश्चरणमुच्यतां । सिध्यन्ते च यथा मन्त्रा लभन्ते सिद्धिमुत्तमां ।

भैरव (२) उवाच—श्मशाने च पुरश्चर्या कथिता भुवि (३) दुर्लभा । अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते (४) । कुजे वा शनिवारे वा नर-मुण्डं समाहृतं । पञ्च-गव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः । निक्षिप्य भूमौ हस्तार्ध-मानतः कानने वने । तत्र तद्-दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानवः एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्प-पादपः ।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते (५) । शवमानीय तद्-द्वारे तेनैव परि - खन्यते (६) । तद् - दिनात् तद् - दिनं यावत् तावदष्टोत्तरं शतम् । स भवेत् सर्व - सिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि । सूर्योदयात् समारभ्य यावत् सूर्योदयान्तरं । तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । चन्द्र-सूर्य-ग्रहे चैव (७) ग्रासादधि-विमुक्तितः । यावत्-संख्यं मनुं जप्त्वा तावद् (८) होमादिकं चरेत् । सूर्य-ग्रहण-कालाद्धि नान्यः कालः

प्रशस्यते (९)। तत्र यद्-यत् कृतं कर्म तदनन्त-फलं लभेत् (१०)।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शरत्-काले चतुर्थ्यादि-नवम्यन्तं विशेषतः। भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत् सहस्रकं। जपेदेकाकी (११) विजने केवलं तिमरालये। अष्टम्यादि-नवम्यन्तमुपवास-परो भवेत्। अन्यत्र गुरु-मार्गस्य लंघनं नैव कारयेत्।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते (१२)। अष्टमी-सन्धि-वेलायामष्टोत्तर-लता-गृहं। प्रविश्य मन्त्री विधिवत् ताः समभ्यर्च्य यत्नतः। पूर्वोक्त-कल्पमासाद्य पूजादिकं समाचरेत्। केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतं। तासां तु पत्र-मूलेषु उल्कां संगृह्य मस्तके (१३)। मन्त्र-सिद्धिर्भवेत् सद्यो (१४) लता-दर्शन-पूजनात्।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते। आकृष्टायाः कुला-गारे (१५) लिखित्वा (१६) मन्त्रमेव च। सम्पूज्य (१७) तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च(१८)। किञ्चिज्जप्त्वा मनुं नीत्वा देवता-भाव-तत्परः। तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सु-संयतः। प्रातः स्त्रीभ्यो बलिं दत्वा मन्त्र-सिद्धिर्न संशयः।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। गुरुमानीय संस्थाप्य ईश-वत् पूजनं विभोः। वस्त्रालङ्कार-हेमाद्यैः सन्तोष्य गुरुमेव च। तत्-सुतं तत्-सुतां चैव तत्-पत्नीं च विशेषतः (१९)। पूज-यित्वा मनुं जप्त्वा स्वयं सिद्धीश्वरो भवेत्।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। सहस्रारे गुरोः पाद-पद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च। केवलं देव-भावेन जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत्। गुरवे दक्षिणां दद्याद् (२०) यथा - विभवमात्मनः। गुरोरनुज्ञा-मात्रेण दुष्ट-मन्त्रोऽपि सिद्ध्यति। गुरुं विलंघ्य शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः सुरैरपि। एषां च मन्त्र-तन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि। गुरु-वक्त्रं विना देवि! सिद्धि-हानिः (२१) प्रजायते।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियमानीय साधकः। शतमष्टोत्तरं जप्त्वा योनिमामन्त्र्य तत्व-वित्। गच्छन् परम-तत्वज्ञः सहस्रं जपते यदि। तदा मन्त्रो भवेत् सिद्धो दुष्ट-मन्त्रोऽपि पार्वति! एतत् त्प्रयोगं देवेशि! न कस्मै दर्शयेत् क्वचित्। एतन्मन्त्रं च तन्त्रं च शिष्येभ्योऽपि न दर्शयेत्। यदि वा दर्शयेन्मोहात् कु-बुद्धिः कुल - नाशकः। अन्यथा प्रेत-राजस्य भवनं याति निश्चितं (२२)।

।। श्रीकाली-तन्त्रे रहस्य-पुरश्चरण-विधिः नाम सप्तमः पटलः ।।

पाठ-भेद

१ ज्ञानमेतन्महादेव; ज्ञातमेतन्महादेव, २ भगवान्, ३ देवि, ४ मुच्यते, ५ मुच्यते, ६ परिखन्य च, ७ चन्द्र-सूर्योपरागे च, ८ जप्त्वा ताव; जपेन्मन्त्रं ताव, ९ विशिष्यते, १० सर्वमनन्त-फलदं भवेत्; अत्र यद् यत् कृतं कर्म तदनन्ताय कल्प्यते, ११ देकस्तु, १२ मुच्यते, १३ पद-मूलेन उक्त्वा संगृह्य कर्णके; पाद-मूलेन उग्रां सम्पूज्य यत्नतः, १४ तस्य, १५ फन्ताः कति-लतागारे, १६ भावयेत्, १७ प्रपूज्य, १८ निवेदयेत्, १९ तथैव च, २० दत्वा, २१ नैव सिद्धिः, २२ तस्य जायते।

अष्टमः पटलः

आचार-विधिः

भैरव उवाच—अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृते (१) ऽमृतमश्नुते। सर्व-भूत-हिते युक्तः समयाचार-पालकः। अनित्य - कर्म-सन्त्यागी नित्यानुष्ठान - तत्परः। मन्त्राराधन - मात्रेण शिव-भावेन (२) तत्परः। परस्यां देवतायां च सर्व-कर्म - निवेदकः। अन्य-मन्त्रार्चन-श्रद्धामन्य-मन्त्र-प्रपूजनम्। कुल-स्त्री-वीर-निन्दांच तद्-द्रव्यस्याप-हरणं। स्त्रीषु रोषं प्रहारं च वर्जयेन्मतिमान् सदा।

स्त्री-मयं च जगत् सर्वं स्वयं तावत् (३) तथा भवेत्। पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं भोज्यं गृहं स्वयं (४)। सर्वं च युवती-रूपं भावयेन्मतिमान् सदा(५)। कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः (६)। यदि भाग्य-वशेनैव कुल-दृष्टिस्तु जायते (७)। सदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत्। बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा युवतीमपि। कुत्सितां वा महा-दुष्टां (८) नमस्कृत्य विभावयेत्। तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यमपि वर्जयेत् (९)। सर्वथा नैव कर्तव्यमन्यथा सिद्धि-रोध-कृत्।

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणं। स्त्री - सङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्व - स्त्रिया अपि (१०)। विपरीत - रता सा तु (११) भविता हृदयोपरि। तद्धस्तावचितं पुष्पं (१२) तद्धस्तावचितं जलं

तद्धस्तावचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत् । सर्वं तदक्षयं प्रोक्तं देवता-पूजनात् प्रिये ! विपरीत-रतासक्तोऽप्यष्टोत्तर-सहस्रकं । अष्टोत्तर-शतं वापि तदा सिद्धिः प्रजायते ।

स्त्री-द्वेषो नैव कर्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियाः (१३) । जप-स्थाने महा-शंखं निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत् । स्त्रियं पश्यन् स्पृशन् गच्छन् विशेषात् कुलजां शुभां (१४) । भक्षन् ताम्बूल-मत्स्यांश्च (१५) भक्ष्य-द्रव्यं यथा-रुचि । मत्स्यं मांसं तथा क्षौद्रं नाना-द्रव्य-समन्वितं (१६) । भक्ताद्यशेष-भक्ष्याणि दत्वा द्रव्यं जपेन्मनुं । दिक्काल-नियमो नात्र स्थित्यादि-नियमो न च । सर्वथा पूजयेद् देवीमस्नातः कृत-भोजनः । महा - निश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।

न जपे काल-नियमो नार्चादिषु बलिष्वपि । स्वेच्छा-नियम उक्तोऽत्र महा-मन्त्रस्य साधने । वस्त्रासन-देहागार-स्थान-स्पर्शा-दि-वारिणः (१७) । शुद्धिं न चाचरेत् तत्र निर्विकल्पं मन-श्चरेत् । सर्व एव शुभः कालो नाशुद्धिर्विद्यते क्वचित् । न विशेषो दिवा-रात्रौ न सन्ध्यायां महा-निशि । नात्र शुद्धेरपेक्षा-ऽस्ति न चामेध्यादि-दूषणं । सुगन्धि-श्वेत-लौहित्य-कुसुमैरर्चयेद् दलैः । विल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसी-वर्जितैः शुभैः । नाधर्मो विद्यते सुभ्रु ! किं च धर्मो महान् भवेत् । स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेद् धृष्ट - मानसः (१८) । कृतार्थं मन्यमानस्तु सन्तुष्टो हृष्ट-मानसः ।

इत्याचार-परः श्रीमान् जप-पूजादि-तत्परः। पालकः कुल-तत्वानां पर-तत्वे प्रलीयते। उदिताकृतिरानन्द - मयः (१६) संसार-मोचकः। अणिमाद्यष्ट-सिद्धीशः साधको देवता (२०) भवेत्।

।। इति श्रीकाली-तन्त्रे आचार-विधिः नाम अष्टमः पटलः ।।

पाठभेद

१ कृत्वा, २ भावन, ३ स्वयं चैव, ४ सुखं, शुभं, ५ स्वयं च युवती - रूपं भावयेद् यत - मानसः, ६ सु - संयतः, ७ दृष्टिः प्रजायते, ८ महा-नष्टां; तथा दुष्टां, ९ मप्रियं तथा, १० स्व-स्त्रियामपि, ११ विपरीत-रतासक्ता, १२ पयः, १३ कुलजां शुभां, १४ भुञ्जानो मदनोद्गतः, १५ गन्ध-ताम्बूल-माल्यं च; भक्षँस्ताम्बूलमन्यांश्च भक्ष्य-द्रव्यान्, १६ भक्ष्य-द्रव्यान् यथाविधि; मांस-मत्स्य-दधि-क्षौद्र - पयः-शाकाद्यमैक्षवम्, १७ वारिणां, १८ शुद्ध - मानसः; भ्रष्ट-मानसः, १९ मदिरानन्द - मानसः संसार-मोचकः सदा; मदिरानन्द - चित्तस्तु संसार - मोचकः सदा, २० सिद्धीनामाश्रयः साधको।

नवमः पटलः

विद्या-फल-विधिः

भैरव उवाच—एवं समस्त-विद्यानां राज्ञी स्तोतुं न शक्यते। वक्त्र-कोटि - सहस्रैस्तु जिह्वा-कोटि-शतैरपि। सर्व-सिद्धि- (१) परा भूमिरनिरुद्ध-सरस्वती। तस्मादस्या ज्ञान-मात्रात् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि। अनिरुद्ध-सरस्वत्या ज्ञान - मात्रेण साधकः। पाण्डित्ये च कवित्वे च वागीश-समतां व्रजेत्। तस्य पाण्डित्य-

वैदग्ध्य-विचित्र-पद-कल्पनात् (२)। देवा अपि विलज्जन्ते किं पुनर्मानवादयः।

अस्ति चेत् त्वत्-समा नारी मत्-समः पुरुषोऽस्ति चेत्। अनिरुद्ध - सरस्वत्याः समो मन्त्रोऽस्ति वै तदा। अस्या जपो ब्रह्म-जपो ज्ञानमस्यात्म-चिन्तनं। योग-सन्धारणा सम्यग् ध्यानमस्या न संशयः। महापदि महा-पापे महा-ग्रह-निवारणे। महा - भये महोत्पाते महा - शोके महाऽमये (३)। महा - मोहे महाऽसौख्ये महा-दारिद्र्य-संकटे। महाऽरण्ये महा-शून्ये महा - स्थाने (४) महा-रणे। दुराख्याने (५) दुरावासे दुर्भिक्षे दुर्निमित्तके। समस्त-क्लेश-संघाते स्मरणादेव नाशयेत्।

अस्या ज्ञानं ब्रह्म-ज्ञानं (६) ध्यानमस्यात्म-चिन्तनं। तस्मादस्याः समा विद्या नास्ति तन्त्रे न संशयः। श्मशान - शयनो वीरः (७) कुल-स्त्रीभिर्विहार-वान्। कुलामृत-निषेवी च काली-तन्त्रार्थ - चिन्तकः। ब्रह्मादि - भवने तस्य समो नास्ति कुतः परः (८)।

स एव सुकृती लोके स एव कुल-भूषणः। धन्या च जननी तस्य येन देवी समर्चिता। वक्त्रे सरस्वती तस्य लक्ष्मीस्तस्य सदा गृहे। तीर्थानि देहे तिष्ठन्ति येन देवी समर्चिता। धनेन धन-नाथश्च तेजसा भास्करोपमः। बलेन (९) पवनो ह्येष येन देवी समर्चिता। गानेन तुम्बुरुः साक्षाद् दाने कर्ण-समस्तथा (१०)। दत्तात्रेय-समो ज्ञानी येन देवी समर्चिता। वह्निरिव रिपोर्हन्ता

गंगेव मल-नाशकः। शुचौ शुचि-समः साक्षादिन्दो (११) रिव सुख-प्रदः। पितृ-देव-समः शास्ता कालस्येव दुरासदः। वारीश इव गम्भीरो निर्घात इव (१२) दुर्द्धरः। वृहस्पति-समो वाग्मी धरणी-सदृशः क्षमी। कन्दर्प-सदृशः स्त्रीणां (१३) येन देवी समर्चिता।

अहो भाग्यमहो लोके कुल-ज्ञान - परायणः (१४)। तेषां मध्येऽपि यः (१५) कोऽपि काली-साधन-तत्परः। त्यजसि त्वं वरं चैतत् (१६) पुमांसं परमं तथा। मादृशं (१७) तु क्वचित् काले त्यजसि कदाचन (१८)। काली-ज्ञानिनमासाद्य न त्यजसि कदाचन। नहि काली-समा विद्या (१९) नहि काली-समं फलं। नहि काली-समं ज्ञानं नहि काली-समं तपः। ये गुणाः परमेशस्य पञ्च - कृत्य - दिधायिनः। ते गुणाः सन्ति सर्वज्ञे (२०)! काली-तत्वस्य नान्यथा। कालिका-हृदय-ज्ञानी लता-साधन-तत्परः। देव-वनन्मानवो भूत्वा लभेन्मुक्ति च शाश्वतीं (२१)।

इति ते कथितं सम्यक् कालिका-तत्वमुत्तमं (२२)। अनेन सम्यगास्थाय सर्व-धर्म-(२३) फलं लभेत्।

॥ इति श्रीकाली-तन्त्रे विद्या-फल-विधिर्नाम नवमः पटलः ॥

पाठ-भेद

१ सर्व-सिद्धेः; सर्व-शुद्धेः, २ जल्पनात्; ३ महाजये; महोत्सवे। ४ महाऽज्ञाने, ५ दुराध्वाने; दुरापदे, ६ ज्ञानमेव, ७ श्मशाने शयने वीरः; श्मशाने वीर-शयनः, ८ समोऽस्ति किमु चापरः। ९ वेगेन,

१० दानेन वासवो यथा; दैश्वर्ये वासवो यथा, ११ दिन्दु, १२ नृसिंह इव; निर्ऋतेरिव, १३ स्त्रीषु, १४ कुल-ज्ञानी भवेन्नरः, १५ मध्ये प्रियः; मध्ये च यः, १६ परं चैव; न कदाचित्, १७ महेशं, १८ जगन्मये; शुचिस्मिते, १९ पूजा, २० सर्वेऽपि, २१ चतुर्विधां, २२ काल्यास्तत्वमनुत्तमं, २३ सर्व-काम।

दशमः पटलः

सिद्ध-विद्या-विधिः

यथा काली तथा दुर्गा यथा दुर्गा तथोन्मुखी। यथा तारा तथा काली (१) यथा नीला तथोन्मुखी। दुर्गायाः कालिकायास्तु ध्यानं समम्िहोच्यते (२)। महा-चीन-क्रमेणैव तारा शीघ्र-फल-प्रदा। गन्धर्वाख्य-क्रमेणैव पञ्चमी भुक्ति-मुक्तिदा (३)। महा-चीन-(४) क्रमेणैव कालिका फल(५)-दायिनी। कालिकोग्र-मुखी शस्ता दत्तात्रेय-विभाविता (६)। सप्त-सप्तति-भेदेन (७) श्रीविद्या विदिता भुवि। तासां तु समता ज्ञेया गुप्त - साधन-साधने। चत्वारिंशत्-प्रकारा च (८) भैरवी परिकीर्तिता। तासां तु समता ज्ञेया गुप्त-साधन-साधने। या या (९) विद्या महा-चण्डा तासामेष (१०) विधिर्मतः। महा-चीन (११)-क्रमेणैव छिन्नमस्ता च सिद्धिदा (१२)। यस्मिन् मन्त्रे य आचारस्तस्मिन् (१३) धर्मस्तु तादृशः। कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव (१४) वा। भ्रान्तिरत्र न कर्तव्या सिद्धि-हानिस्तु जायते।

विशुद्ध-चित्तोऽत्र भवेत् सिद्धिः स्यादपवर्गदा । एवं तु तत् (१५) क्षणात् सिद्धिर्विस्मयो नास्ति चापरः । विस्मिता विलयं यान्ति पशवः शास्त्र-मोहिताः ।

भैरव उवाच—कालिका-हृदयं विद्यां सिद्ध-विद्यां महोदयां । पुरा येन यथा जप्त्वा सिद्धिमापुर्दिवौकसः । कामाक्षरं वह्नि-संस्थमिन्दिरा-नाद-विन्दुभिः । मन्त्र-राजमिदं ख्यातं दुर्लभं पाप-चेतसां । सुलभं शुभदं (१६) भक्त्या साधकानां महात्मनां । त्रिगुणा तु विशेषेण सर्व-शास्त्र-प्रबोधिका । अनया सदृशी विद्या नास्ति सारस्वत - प्रदा । आकर्षण-वशीकार - मारणोच्चाटनं तथा । शान्ति-पुष्ट्यादि-कर्माणि साधयेदनयाऽचिरात् । किं वक्त-व्यमनेनापि वर्णितुं नैव शक्यते । जिह्वा-कोटि-सहस्रैस्तु वक्त्र-कोटि-शतैरपि । अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः । अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ।

ध्यान-पूजादिकं सर्वं साधनं च पुरस्क्रिया । अनिरुद्ध-सरस्व-त्याः समानं सर्वमीरितम् (१७) । रक्तैराकर्षणे पुष्पैः पीतैः स्त-म्भन-कर्मणि । मारणे कृष्ण-पुष्पैस्तु पूजयेद् घोर-(१८) दक्षिणां ।

आद्यैक-वीजं वीजानां तथैवान्तेऽपि चैककं (१९) । दक्षिणे कालिके चेति मध्ये संयोज्य मन्त्र-वित् । स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य भवेदाकर्षणं महत् । लोहितांकुश-हस्तां च एक-शूल-धरां (२०) तथा । महाकाल-समासीनां (२१) ध्यात्वा चाकर्षणं महत् (२२)। स्थावरं जङ्गमं चैव पाताल - तलगं (२३) तथा । आकर्षयति

मन्त्रज्ञः किमन्यद् भुवि योषितः। अयुतैक-जपः प्रोक्तः सदाकर्षण-कर्मणि।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तमं। कूर्च-लज्जा-द्वयं वीज-द्वयंठान्तं(२४) तथैव च। योजयित्वा जपेद् विद्यामयुतं (२५) वशयेद् ध्रुवं (२६)। ध्यानमस्याः (२७) प्रवक्ष्यामि येन वश्यं जगत्-त्रयं। नाग-यज्ञोपवीतां च चन्द्रार्द्ध-कृत-शेखरां। जटा-जूट-समासीनां (२८) महाकाल-समीपगां (२९)। एवं काम-शरा-विद्धा (३०) विह्वला काम-मोहिताः (३१)। स्वं स्वं सन्त्यज्य (३२) भर्त्तारं यान्ति लोक-त्रयाङ्गनाः (३३)।

अथ वक्ष्ये महा-विद्यां सिद्ध-(३४) विद्यां महोदयां। भैर-वेण पुरा प्रोक्ता (३५) काली-हृदय-संज्ञितां (३६)। अस्या ज्ञान-प्रभावेण कलयामि जगत्-त्रयं। प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य (३७) हृल्लेखा-बीजमुद्धरेत्। रति-बीजं समुद्धृत्य (३८) प-पञ्चम-भगान्वितं। ठ-द्वयेन समायुक्ता विद्या-राज्ञी मयोदिता (३९)। अनया सदृशी विद्या कालिकायास्तु दुर्लभा।

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितं (४०)। सिद्ध-काली ब्रह्म-रूपा देवता भुवनेश्वरी। रति-वीजं वीजमस्या हृल्लेखा शक्तिरुच्यते। हृल्लेखया षड्-दीर्घेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्। अङ्ग-षट्कं ततो न्यस्य ध्यात्वा देवीं शिवो भवेत्।

खड्गोद्भिन्नेन्दु-बिम्ब-स्रवदमृत-रसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा। सव्ये पाणौ कपालाद् गलदमृत (४१) मथो मुक्त-केशी पिवन्ती।

दिग्वस्त्रा बद्ध-काञ्ची मणि-मय-मुकुटाद्यैर्युता दीप्त-जिह्वा।
पायान्नीलोत्पलाभा रवि-शशि-विलसत्-कुण्डलालीढ़-पादा।

जपेद् विंशति-साहस्रं सहस्रैकेण संयुतं। होमयेत् तद्दशांशेन मृदु-पुष्पेण मन्त्र-वित्। त्रिकोणं कुण्डमालिख्य (४२) सिद्ध-विद्यः शिवो भवेत्। पूजनं च प्रयोगं च दक्षिणा-वद्रुपाचरेत्। एकाक्षर्या महा-कल्प-समानं सर्वमेव वा।

रक्त-पद्मस्य (४३) होमेन साक्षाद् वैश्रवणो (४४) भवेत्। बिल्व-पत्रस्य होमेन राज्यं भवति (४५) निश्चितं। रक्त-प्रसून-होमेन वशयेदखिलं जगत्। पीत-पुष्पस्य होमेन स्तम्भयेद् वायु (४६) मप्यथ। मालती-पुष्प-होमेन साक्षाद् वाक्-पति-सन्निभः। कृष्ण-पुष्पस्य होमेन शत्रून् मारयतेऽचिरात्। अत्र सर्वस्य होमस्य (४७) संख्या स्यादयुतावधि।

अस्या-स्मरण-मात्रेण महा-पातक-कोटयः। सद्यः प्रलयमायान्ति साधकः खेचरो भवेत्।

॥ इति श्रीकाली-तन्त्रे सिद्ध-विद्या-विधिः नाम दशमः पटलः ॥

पाठ-भेद

१ नीला, २ सम्यगिहोदितं; सममिहोदितं, ३ भुवि दुर्लभा, ४ नील, ५ सिद्धि, ६ विभावना, ७ भेदा सा, ८ प्रकारेण, ९ महा, १० मेव, ११ नील, १२ विधिर्मतः; विधिः स्मृतः, १३ तत्र, १४ स्वर्ग वा; मोक्षमेव; मुक्तिरेव; मोक्षश्च एव, १५ एतत् तु तत्; तत्र तत्र।

१६ सुलभा शुभदा, १७ समं पूर्ववदाचरेत्; साधनं सर्वमीरितं; साधनं पूर्वमीरितं, १८ पूजयेदेव। १६ अस्यैकैकं तु वीजानां तथैवान्ते च चैककं; अद्यैककं तु बीजानां तथैवान्ते च एककं, २० लोहितांगुलि-हस्ता च एक-शूल-धरा।

२१ कालाग्रमासीना, २२ भवेत्; चरेत् २३ तलगा, २४ वीज-द्वयं चान्ते; वीज-द्वयं चान्ते; वीजं द्वयं ठान्तं, २५ नियुतं, २६ वश कर्मणि, २७ मन्त्रः; मन्त्रं, २८ जटा-युक्तां च सञ्चिन्त्य, २९ समीपतः।

३० काम-समा विद्या; काम-समाविद्धा, ३१ निर्लज्जा विक्लवाः स्त्रियः, ३२ स्वयं संगृह्य, ३३ आलिङ्गन्ति सदैव तं, ३४ सिद्धि, ३५ प्रोक्तां, ३६ संस्थिता; सज्ञिता, ३७ मुच्चार्य, ३८ समुच्चार्यं, ३९ प्रकीर्तिता; महोदया, ४० उदाहृतं, ४१ दसृज, ४२ मासाद्य, ४३ पुष्पस्य, ४४ वैश्वानरो, ४५ प्राप्नोति, ४६ वह्नि, ४७ सर्वेषु होमेषु।

एकादशः पटलः

सामान्य-साधनं

भैरव उवाच—अथोच्यते कालिकायाः सामान्य - साधनं प्रिये ! कृतेन येन विधिवत् पलायन्ते महापदः। शिवा-बलिश्च दातव्यः सर्व-सिद्धिमभीप्सुभिः।

महोत्पाते महा-घोरे महा-रोगे (१) महा-ग्रहे। महापदि महा-युद्धे महा-विग्रह-संकुले (२)। महा-दारिद्र्य-शमने महा-दुःस्वप्न-दर्शने (३)। महाऽशांतौ महा-वश्ये (४) महाऽस्वस्त्ययने तथा।

घोराभिचार-शमने (५) घोरोपद्रव-नाशने। कूट-युद्धादि-शमने (६) कूट-शत्रु-निवारणे (७)। राजादि-भय-शान्तौ च राज-क्रोध-प्रशान्तये (८)। न ददाति बलिं यस्तु शिवायै शिवताप्तये (९)। स पापिष्ठो नाधिकारी कुल-देव्याः समर्चने (१०)।

कुलीनं नावमन्येत कुलज्ञं (११) परिपूजयेत्। कुलज्ञेषु प्रसन्नेषु (१२) कालिका-सन्निधि-(१३) र्भवेत्। अहो धन्यवतां (१४) लोके जानाति (१५) कुल-दर्शनं। तेषां मध्ये तु यः कश्चित् (१६) कुल-देवीं समर्चयेत्। कुलाचार-विहीनो यः पूजयेत् कालिकां नरः। स स्वर्ग-मोक्ष-भागी च न स्यात् सत्यं न संशयः।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं पुष्टिं महद्-यशः। कवित्वं भुक्ति-मुक्ती च कालिका-पाद-पूजनात्। शुक्लेन ध्यान-योगेन कविता (१७) वश-वर्तिनो। पीतेन ध्यान-योगेन स्तम्भये (१८) दखिलं जगत्। कृष्णाभा शत्रु-मरणे धूम्राभा (१९) वैरि-निग्रहे। अनया विद्यया मन्त्री स्पृशेत् पातकिनं यदि। स तु संस्पर्श-मात्रेण वक्ति सौधीमनर्गलां (२०)। कुमारी-पूजनं कुर्यात् सर्व-धर्म-(२१) फलाप्तये।

भैरव उवाच—अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि प्रयोगं शत्रु-निग्रहं। सर्वान्ते वह्नि-वनितां योजयित्वाऽयुतं जपेत्। कालिकां (२२) द्विभुजां कर्तृ-कपाले सव्य-दक्षिणे (२३)। एवं ध्यात्वा तु शत्रूणां मारणं समुपाचरेत् (२४)।

एवं काली-मतं प्रोक्तं सर्व-सिद्धि-प्रदायकं (२५)। अनया विद्यया सम्यक् साधयेत् स्व-मनोषितं। अनया विद्यया यद्-यन्न साधयति (२६) साधकः। तत्तत् सर्वेषु तन्त्रेषु नास्ति सत्यं न संशयः।

काल-नियन्त्रणात् काली ज्ञान - तत्व - प्रदायिनी (२७)। तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन यजेदुभय - (२८) सिद्धये। काली-मतमिदं दिव्यं भैरवेण प्रकाशितं। न कुत्रापि प्रवक्तव्यं साधते च (२९) स्व-पौरुषं। एतत्तन्त्रं च मन्त्रं च ध्यानं चैव प्रपूजनं। प्रकाशात् सिद्धि - हानिः स्यात् तस्माद् यत्नेन गोपयेत्। तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन गोप्तव्यं देवता-गणैः (३०)। यथा मनुष्यो लभ्येत (३१) तथा कार्यं महेश्वरि ! यो भक्तः साधयेद् ज्ञानी तस्मै नित्यं (३२) प्रकाशयेत्।

॥ श्रीकाली-तन्त्रे सामान्य-साधनं नाम एकादशः पटलः ॥

पाठ-भेद

१ महा-रोगे महोत्पाते महा-दोषे; महा-रोगे महा-दोषे; महा-दोषे, २ संकुल-संग्रहे; निग्रह-संकुले, ३ दुःख-प्रदर्शने, ४ वल्ये; बाल्ये, ५ घोराभिगमने घोरे, ६ युद्धाभिगमने, ७ निपातने, ८ राजोपद्रव-नाशने, ९ तृप्तये, १० स पापिष्ठो न लज्जेत् कुल-देव्याः समर्चने; स पापिष्ठस्तु लज्जेत् कुल-देव्याः प्रपूजने, ११ देवी-वत्, १२ कुलजेषु, १३ सन्निधौ, १४ भाग्यवत्तां; धन्यतरां, १५ तथेति; जानन्ति, १६ ऽपि यः कोऽपि।

१७ कालिका, १८ वशये, १९ कृष्णेन शत्रु-शमनं धूम्राभं, कृष्णाभां शत्रु-मरणे धूम्राभां, २० वह्नि-सौधीं निराकुलं; मुक्ति-सौख्यमनर्गलं, २१ कर्म, २२ कपिलां, २३ दक्षिणां, २४ समुदाहृतं, २५ सिद्धिरनुष्ठितं; सिद्धेरनुष्ठितं, २६ धारयति, २७ प्रदर्शिनी, २८ दभय, २९ साधकेन, ३० हि त्वया प्रिये, ३१ मर्त्यो न लभते, ह्यन्यो न लभते, ३२ साधको मन्त्री तस्मै सत्यं; साधको ज्ञानी तस्मै ज्ञानं; साधको ज्ञानी तस्मै नित्यं।

द्वादशः पटलः

परम-गुह्याचारः

भैरव उवाच—त्वयोक्तं पूजनं देव ! साधनेन पुरस्कृतं। इदानीं श्रोतुमिच्छामि वीर-नित्य-क्रियां प्रभो !

भैरव्युवाच—प्रातःकृत्यं ततो न्यास ऋष्याद्यङ्गांगुलैरपि। वर्ण-व्यापक-विन्यासः पीठ-न्यासस्ततः परं। ततोऽन्तर्यजनं देवि ! योगि-योगानिशा प्रिये ! पञ्चमानां प्राशनं च जपो रात्रौ विधानतः। स्तोत्र-पाठो यत्र-तत्र समये च वरानने ! वीर-श्रद्धा तर्पणं च तथालापः स्त्रियामपि। विजयाङ्गीकृतिश्चैव स्व-सुखोद्देशिनं तथा। अप्रकाशः कुलाचारे मृदु-भाषा च सर्वतः। गुर्वनुज्ञा-मात्रेणैव सर्वाचार-विधिः प्रिये !

एवमादीनि चान्यानि वीर-निन्दा न सुव्रते ! ऐति परम्परया ह्येन च रुद्रा देवि ! तच्चीने प्रतिष्ठितं। अन्यत्र विषयेन्नास्ति सत्यमेतद् ब्रवीमि ते। वामाचारः कुलाचारश्चीन-नाथेन शङ्क-

रात् । प्रकाशितः शङ्करेण महा-रुद्रात् प्रकाशितः । महा-चीनाधिपो देवो माहात्म्येन तयोर्द्वयोः । कुलाचारं कुल-श्रेष्ठे वामाचारः प्रयत्नतः । अस्यैवाशेष-माहात्म्यं चीन-तन्त्रे मयोदितं । कुलाचारमशेषेण चीन-नाथेन वेत्स्यपि ।

यद् यद् दृष्टं श्रुतं यद् यद् गुरुः साधक-वक्त्रतः । ततत् कार्यं वीर-वर्यैस्तेन सिद्धिर्भवेत् प्रिये - क्वचिच्चण्डः क्वचिद्भण्डः क्वचिद्-भूत - पिशाच-वत् । क्वचिद्-देवार्च्चन-रतः क्वचित्तन्निन्दकस्तथा । भवेच्छील-रतो वीरो महा-रुद्रस्य शासनात् ।

भक्षणं च विधिं वक्ष्ये पञ्चमादेर्यथा-विधि । आदौ गुरुं स्मरन् पश्चात् कुण्डलीं परिभाव्य च । आजिह्वान्तस्तर्पणेन भक्षयेन्नति-पूर्वकं । गुरुं नत्वा तपो-ज्येष्ठं शक्तेर्नति-परायणः । ज्येष्ठत्वं वा कनिष्ठत्वं कुलाचार-विधानतः । अभिषेक्ता गुरुः साक्षान्मन्त्रदेन समः स्मृतः । अभिषेके विना भूते प्रधानत्वं करोति यः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलं । तद्विधिश्चोत्तरातन्त्रे पाशवेन विमिश्रितः । वीरैर्ग्राह्यः प्रयत्नेन हंसैः क्षीरं जलाद् यथा । आचारोऽयं शक्ति-मन्त्रे सर्वत्र परि-कथ्यते ।

विशेषात् कालिका-तारा - भैरव्यादिषु पञ्चसु । कालिकातारिणी-भेदं यः करोति स नारकी । यत्र यत्र कालिकेति नाम संश्रूयते प्रिये ! तत्र तारा - विधानं च युते नात्र संशयः । यद् यदन्यत् साधनं च नान्यत्रापि नोदितं । तत् सर्वं पूर्व-पूर्वेण तन्त्रेण ज्ञायते प्रिये ! न पूजा न्यास - जालं वा स्त्रीणां - केवल-जपतः । सिद्धिर्भवति देवेशि ! कुलाचार-विधानतः ।

अथ चेत् क्रियते न्यासस्तदा श्रृणु विधिं प्रिये ! ऋष्याद्यङ्गक-पीठानां न्यासं कृत्वा च संस्मरेत् । ततः साहमिति ध्यायेन्महा-चीन-मतं यथा ॥ काली-तन्त्रं कौल-तन्त्रं तारा-तन्त्रं तथा प्रिये ! चीन-तन्त्रं स्वतन्त्रं च युगपद्वक्त्रतः स्मृतं । अथ यद्यन्मतं प्रोक्तं तत्पश्चसु समाचरेत् । गुरु-पाद-प्रसादेन शुभादृष्टस्य योगतः । आचारः प्राप्यते वीरैर्नात्र कार्यश्च संशयः । तदैव तुष्टा सा देवी निर्विकल्पः स्वयं यदि ।

।। इति श्री काली-तन्त्रे परम-गुह्याचारः नाम द्वादशः पटलः ।।
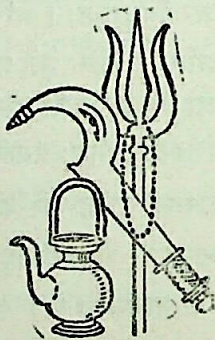
परिशिष्ट

ध्यान एवं मन्त्र

'क्रीं'-बीजे शशि-शेखरे घन-कुचि श्यामे त्रिनेत्रे शिवे !
खड्ग-छिन्न-शिरो-वराभय-करे! भो मुण्ड-माल-प्रिये ।।
प्रत्यालीढ - पदे शवोपरि महा-कालेन सार्द्धं रते !
आत्मायस्व दिगम्बरि स्मित-मुखि श्रीदक्षिण-कालिके ।।

भगवती दक्षिण-कालिका का उक्त ध्यान पूज्य स्वामी सदाशिव तीर्थ के हस्ताक्षरों में उनसे प्राप्त 'काली-तन्त्र' की प्रति के प्रारम्भ में अङ्कित है । इस ध्यान के द्वारा श्री जगदम्बा के दिव्य स्वरूप को हृदयङ्गम करने में साधकों को सहायता मिलती है । इसी प्रकार 'तन्त्रसार' में भगवती के मन्त्र की जो व्याख्या दी गई है, उससे मन्त्रार्थ को समझना सरल हो जाता है । व्याख्या इस प्रकार है—

'क्रीं'-कारो मस्तकं देवि ! 'क्रीं'-कारश्च ललाटकम् ।
नेत्र-त्रयश्च 'क्रीं' - कारो 'हूँ' - कारेण च नासिका ।।

'हूँ'-कारो मुख-पद्मं स्यात् 'ह्रीं'-कारः कर्ण-युग्मकम् ।
'ह्रीं'-कारेण भवेद् ग्रीवा 'द'-कारश्चिबुकं भवेत् ।।

'क्षि'-कारेण भवेद् दन्तो 'णे'-कारेनोष्ठ-युग्मकम् ।
'का'-कारेण स्तन-द्वन्द्वं 'लि' - कारः पृष्ठ - देशकः ।।

'कें' - कारेण भवेद् बाहुः 'क्रीं' - कारेणोदरं भवेत् ।
'क्रीं'-कारो नाभि-देशः स्यात् 'क्रीं'-कारश्च नितम्बकः ।।
'हूँ'-कारो योनि-रूपः स्यात् 'हूँ' - कारेणोरु-युग्मकम् ।
'ह्रीं'-कारो जानु-युग्मं स्यात् 'ह्रीं'-कारो गुल्फ-देशकः ।
'स्वा' - शब्देन पद - द्वन्द्वं 'हा' शब्दैर्नख - वरं तथा ।

भगवती काली विषयक साहित्य

काली-कल्पतरु **२५-००**

भगवती श्री काली के सम्बन्ध में प्रायः सभी प्रकार की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिये यह निवन्ध-संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल पांच प्रकार के निवन्ध संग्रहीत हैं—१ काली-तत्व - संग्रह, २ काली-महिमा, ३ काली-मन्त्र-साधना (यन्त्र व मन्त्र-परिचय), ४ काली के उपासक, ५ काली का प्रकाशित साहित्य।

काली-नित्यार्चन (प्रामाणिक पूजा-पद्धति) **६-००**

काली-स्तव-मञ्जरी **१५-००**

इस नवीन संस्करण में भगवती काली के ३२ स्तोत्र कवच, हृदय, शतनामादि हैं। गुप्तावतार वावाश्री की पाण्डु-लिपि से अनेक दुर्लभ स्तोत्रों का समावेश किया गया है। 'आम्नाय-

धुरन्धर' स्व० पं० हरिशास्त्री दाधीच कृत 'काली-कस्तूरी-स्तव-राज' भी पहली वार प्रकाशित किया गया है। भ० दक्षिणा काली का दुर्लभ रङ्गीन चित्र है।

'एकाक्षरी कालिका कवच' और 'मन्त्र-सिद्धिदं कवचं' का भी पहले-पहल प्रकाशन हुआ है। प्रायः सभी स्तोत्रों का हिन्दी-रूपान्तर भी दिया गया है, जिससे यह संग्रह विशेष उपयोगी हो गया है।

ककारादि-काली-नाम साहस्त्रं	३-००
काली कर्पूर स्तवः (सविधि)	२-००
काली सहस्त्रनाम साधना	२-००
कालिका कवचम्	०-५०
काली तन्त्र (भाषा-टीका-सहित)	५-००
शक्ति-संगम-तन्त्र (सुन्दरी-खण्ड)	२५-००
शक्ति-संगम-तन्त्र (काली-खण्ड)	२५-००

शक्ति-सङ्गम-तन्त्र (सुन्दरी खण्ड) में भगवती काली की नित्याओं के पूजा-विधान के साथ ही नित्याओं के यन्त्रों के रेखा-चित्र पहले पहल प्रकाशित किये गये हैं।

हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र (काली का मुख्य तन्त्र) २०-००